* ओंतत्सत् *

करुण तरङ्गिणी



[सचित्र, मर्मस्पर्शी, कारुणिक काव्यग्रन्थ]

लेखक :—

पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री

प्रकाशक :—

❀ श्रीमकरन्द-साहित्य-मन्दिर ❀

स्वत्त्वाधिकारी :—

श्रीकृष्णकान्त शास्त्री

श्रीविष्णुकान्त शास्त्री

गाङ्गेय-भवन, २८०, चित्तरञ्जन एवेन्यू,

* कलकत्ता *

[मूल्य—सजिल्द, एक रुपया]

मुद्रक—
मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए०
विश्वमित्र प्रेस
१४।१ए, शम्भूचटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता

सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ?

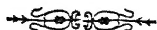
卐

"करुण तरंगिणी"

का

शब्द चित्र-

कोई कमल खिला सौरभमय,
नव किसलय-छबि, गमक रहा।
कोई कमल झड़ा, केसर बिन,
'नाल' पकड़ कर कांप रहा॥
निरख...निरख ऐसी अस्थिरता,
आयो उन्मन रङ्गिणी।
सहृदय...'ममता' की आंखोंसे,
निकली..."करुण तरङ्गिणी"॥



"कवि सम्राज मतिथिं जनानाम्

आसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः"

—श्रीशुक्ल यजुर्वेद ।

" कविता देवता परम् "

—वाणी विलास ।

"धन्य ! कृती कवियोंका कौशल,

धन्य ! अमृतवर्षी आलाप ।"

—आचार्य

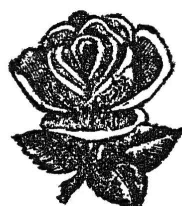
श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी ।

विषय-सूची



विषय सूची

चित्र-सूची



प्रमुख साहित्यसेवियोंकी

सम्मतियां

वर्तमान हिन्दी भाषाके सर्वश्रेष्ठ उन्नायक, अपने समयके अद्वितीय सम्पादक, पूज्यपाद आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीकी सम्मति—

(१)

आसाद्य पत्रं* तव पण्डितेन्द्र !
मया प्रमोदो नितरा मवाप्तः ।
रसज्ञ ! काव्यज्ञ ! च विज्ञवर्य !
कृतज्ञतां मे विपुलां गृहाण ।।

(२)

कवीश्वर स्त्वं प्रतिमा-स्थिर स्त्वम्
साहित्य शास्त्रे च 'कलाधर' स्त्वम् ।
इतीव मे "सम्मति" मत्र शास्त्रिन् !
जानीहि गाङ्गेय नरोत्तम ! त्वम् ।।

---

* एक बहुत बड़ा पद्यमय पत्र तथा 'करुण तरङ्गिणी' और 'नूतन निकुञ्ज'के कुछ अंश और कुछ संस्कृत कविताएं इस ग्रन्थकारने सम्मतिके लिए आचार्य द्विवेदीजीके पास भेजी थीं, उसी 'पत्र'का उन्होंने यहां प्रथम उल्लेख किया है ।

(३)

स्व-मातृभाषा-विनिबद्ध काव्यम् ।
एकाऽधिकं यत्प्रहितं त्वयाऽद्य ॥
तत्सर्वं मेवातिशयेन रम्यम् ।
इत्येव विद्वन् ! त्रिनयो मदीयः ॥

× × ×

इति निवेदयति
द्विवेदी महावीर प्रसादः

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके भूतपूर्व सभापति, खड़ी बोलीमें महाकाव्योंके प्रथम रचयिता, कवि-सम्राट् पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जीका अभिमत—

प्रियवर !

× × × × करुण तरङ्गिणी नामक आपकी पुस्तक देखी। वह वास्तवमें 'करुण तरङ्गिणी' ही है, उसकी लहरें हृदयमें करुण रसका स्रोत प्रवाहित कर देती हैं। कविताएं क्या हैं? **सरसताकी धाराएं हैं। ऐसा सुन्दर ग्रन्थ लिखनेके लिये धन्यवाद !** आशा है अधिकारियों द्वारा इसका आदर होगा। आपका प्रेम ही मेरे लिये सब कुछ है।

पत्र विलम्बसे जाता है क्षमा कीजियेगा।

हितैषी
'हरिऔध'

—*—

हिन्दुओंके गौरव, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके संस्थापक, हिन्दी भाषाके महान् हितकारी, भारतके सर्व-श्रेष्ठ अन्यतम नेता, पूजनीय पं० मदनमोहन मालवीयजीकी

सम्मति—

पं० गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्रीजीने बड़े प्रेमसे मुझको 'करुण तरङ्गिणी' नामक अपनी पुस्तककी कविताओंके कुछ अंश सुनाये। उनको सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। **'गांगेय' जी के भाव और भाषा सराहनीय हैं।** मैं हृदयसे कविताके क्षेत्रमें गांगेय शास्त्रीजीकी उन्नति चाहता हूं।

—मदनमोहन मालवीय



काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्रधानाध्यापक,
अनेक महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थोंके निर्माता,
'मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक'के विजेता, राष्ट्र-
भाषाकी शुद्ध शैलीके प्रबल समर्थक,
समालोचक-शिरोमणि,

श्रद्धेय आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लकी

सम्मति—

श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्रीजीकी 'करुण-तरङ्गिणी' देखी। करुण और विप्रलम्भकी बड़ी रमणीय धारायें इसमें मिलीं। **भाषा बहुत स्वच्छ और मर्मपथपर चली है।** कृत्रिम चेष्टाओंकी ओर प्रवृत्ति नहीं हुई है। एक हृदयकी अनुभूति दूसरोंके हृदय तक पहुंचानेके लिये जैसा वाग्विधान चाहिये, वैसा ही इस पुस्तकमें पाकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इसके गीतोंकी लयमें भी श्रोताओं को लीन करनेकी पूरी शक्ति है। आशा है शास्त्रीजी हिन्दी-काव्य-क्षेत्रकी सरसता अपनी वाणीसे इसी प्रकार बढ़ाते रहेंगे और उनकी रचनाओंका आदर शिक्षित समुदाय तथा विद्यालयोंमें भी यथेष्ट रूपसे होगा।

—रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके भूतपूर्व सभापति, हिन्दी भाषामें तेजस्विनी तुलनात्मक समालोचनाके आदि प्रवर्तक, श्रद्धेय स्वर्गीय आचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्माकी सम्मति—

श्रीयुत पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्रीजीकी कई पुस्तकें इधर मेरे देखनेमें आयीं। कुछ पुस्तकोंके अंश शास्त्रीजीके मुखसे सुने। श्री हनुमज्जन्म वर्णन, नूतन निकुञ्ज, करुण तरङ्गिणी, गांगेय-गीत-गुच्छक, गांगेय-गद्य-माला प्रभृति पुस्तकोंसे आपकी सर्वतोमुखी प्रतिमाका प्रमाण मिलता है। **श्री गांगेयजी की कविताएं परम रमणीय और सीधे हृदयतलको स्पर्श करनेवाली होती हैं। जगह-जगह उनमें पाण्डित्य और अनुभवके इत्रकी खुशबू गमकती है।** शास्त्रीजी संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंके सिद्ध-हस्त कवि हैं। सम्पत्ति सम्बन्धी और अनेक प्रकारके मुकदमोंके कार्योंमें संलग्न रहनेपर भी साहित्य-सेवाके लिये आप समय निकाल लेते हैं, जो सर्वथा सराहनीय है।

आपकी कार्य-प्रवीणतापर मुग्ध होकर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंने पूर्ण कृपा की है। **आपकी यह विशेषता है कि विविध छन्दों और गीतोंमें नवों रसोंका वर्णन समान रूपसे खूबीके साथ करते हैं।** 'नूतन निकुंज' में आपने नव रसोंके साथ-साथ सहृदय-सम्भावनीय अन्य रसोंका भी

बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। ईश्वर शास्त्रीजी की उत्तरोत्तर उन्नति करें, यही शुभ कामना है।

—पद्मसिंह शर्मा

—*—

प्रयाग विश्वविद्यालयके भूतपूर्व वाइस चान्सलर, महामहोपाध्याय, डा० गङ्गानाथ झा एम० ए० डी० लिट् महोदयकी सम्मति—

नतयः !

"करुण तरङ्गिणी" पुस्तक मिली। पुस्तक अच्छी है। काव्य जो कुछ मैंने पढ़ा पढ़ाया, वह सब संस्कृतमें। फिर हिन्दी काव्यका मर्म मैं नहीं समझ सकता। परन्तु पद्य पढ़नेमें अच्छे लगते हैं—इतना अवश्य कह सकते हैं।....

शुभाकांक्षी—

—गङ्गानाथ झा

—*—

सेण्ट्रल हिन्दू-कालेज और काशी विद्यापीठके भूतपूर्व प्रधानाध्यापक, एकादश हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके सभापति, प्रमुख राष्ट्रीय नेता, सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीमान् डा० भगवान्दास एम० ए० महोदयका अभिमत—

काशीमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर श्री गांगेय नरो-

त्तम शास्त्री यहां आये थे। आपने अपनी हिन्दी कविता मुझे सुनायी। कुछ छपे हुए पृष्ठ भी उस पुस्तिका (करुण तरङ्गिणी) के दिये। उन्हें मैंने पीछे देखा। अठारह-उन्नीस वर्ष पूर्व शास्त्रीजी काशी विद्यापीठमें संस्कृतके अध्यापक थे, तबसे आपके साथ मेरा परिचय है। इनका चित्त जैसा कोमल, सरस और प्रसन्न है, वैसी ही इनकी कविता भी कोमल, सरस और प्रसन्न है। × × × × मैं श्री गांगेय नरोत्तमजीकी कविताका अभिनन्दन करता हूं।

—भगवान् दास

—*—

हिन्दीमें "प्रथम दैनिक पत्र"के प्रवर्तक, अष्टाविंशति हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति, सम्पादकाचार्य श्रद्धेय पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी जी की सम्मति—

पण्डित गांगेय नरोत्तम शास्त्रीने "करुण तरङ्गिणी" नामसे अपनी कविताका संग्रह प्रकाशित कराया है। संस्कृतके पण्डित अधिकांशमें हिन्दीकी उपेक्षा अबतक करते आ रहे हैं, इसलिये शास्त्रीजीका हिन्दीमें कविता करना ही प्रशंसनीय है। परन्तु यदि उनकी कवितामें कवित्व भी हो, तब तो कहना ही क्या ? कविताके विषयमें सम्मति देनेका अधिकार हमें नहीं है, पर जहां तक हम समझ सकते हैं,—**"यह निस्संकोच कह सकते हैं कि कई रचनाएं बड़ी भावमयी हैं और अनूठी कल्प-**

नाओंसे भरी हुई हैं। भाषा भी सरल और शुद्ध है"

हिन्दी साहित्यमें अभी बहुत कमी है। शास्त्रीजी यदि उसे पूर्ण करनेके लिये हमें संस्कृत साहित्यके भाण्डारका परिचय देनेके लिये हिन्दीमें एक ग्रन्थ लिख दें, तो उससे हिन्दीका बड़ा उपकार हो सकता है। इस पर दो मत नहीं हो सकते। आशा है, शास्त्रीजीकी इस 'करुण तरङ्गिणी' का अच्छा आदर होगा।

—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

हिन्दी-संसारके स्वनामधन्य महाकवि, संस्कृति और स्वधर्मके चलते-फिरते प्रतीक, 'मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' के विजेता

श्रीमान् बाबू मैथिलीशरण गुप्तजीकी सम्मति—

........श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्रीजीकी 'करुण-तरङ्गिणी' की कुछ रचनाएं आपके ही मुखसे सुननेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। जिस तन्मयतासे आपने अपने पद्य पढ़े, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दीके पाठक भी आपकी रचनाएं पढ़कर वही तन्मयता प्राप्त करें, यही मेरी कामना है। आशा है 'करुण तरङ्गिणी' प्रचार पायेगी।

—मैथिली शरण गुप्त

अनेक सुकवियोंके जनक, 'सुकवि' के सम्पादक, सुकविता-सुधा वर्षी मेघ, पं० गयाप्रसाद शुक्ल, 'त्रिशूल-सनेही' की सम्मति...

मैंने विद्वद्वर सुकवि गांगेय नरोत्तम शास्त्रीजीकी 'करुण तरङ्गिणी' देखी। कई कविताएं शास्त्रीजीसे सुनीं भी। इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रीजीने अपना पथ अलग बनाया है, उन्होंने किसीका अनुकरण नहीं किया। वे अपनी कविताओंके भाव सीधे प्रकृतिसे ग्रहण करते हैं और कोमलकान्त पदावलीसे उन्हें ऐसा सजाते हैं कि वे हृदयहारी और मनोमोहक बन जाते हैं। यों तो काव्याचार्योंने शृङ्गार रसको रसराज माना है, परन्तु काव्यमें करुणा रसको महत्ता भी कम नहीं है। महाकवि भवभूतिकी राय तो यह है कि करुणारस ही सब रसोंमें श्रेष्ठ है। कदाचित् ही कोई महाकाव्य ऐसा हो जिसमें करुणाकी छटा न दिखायी देती हो। इसमें सन्देह नहीं कि हृदयको द्रवित करनेमें करुणा ही सर्वश्रेष्ठ है। कहा जाता है कि लौकिक कविताका आविर्भाव आदि कवि वाल्मीकीके द्वारा हुआ था। आदि कविका पहला श्लोक भी करुणापूर्ण है। वह ऐसी घटनापर ही अवलम्बित है जो करुणा प्रधान है।

'करुण तरङ्गिणी' में शास्त्रीजी अपने प्रयास में पूर्ण सफल हुए हैं। इसकी प्रत्येक कवितामें करुणा की लहर लहराती है। मैं आपको इस सफलतापर बधाई देता

हूं। आशा है कि हिन्दी काव्यप्रेमी इससे अलौकिक आनन्द प्राप्त करेंगे और इसपुस्तकका यथेष्ट प्रचार होगा।

—सनेही।

साहित्य-सङ्गीत-नाट्यकलाके आचार्य, देश-हितार्थ कष्टभोगी, राष्ट्रकवि, पं० माधव शुक्लकी सम्मति—

सौभाग्यवश आज अपनी ही मड़ैयामें परम मित्र पं० गांगेय नरोत्तमजी शास्त्रीका दर्शन हुआ। आपकी "करुण तरंगिणी" नामक पुस्तक देखी। हमारे अनुरोधसे आपने उसकी कुछ कविताएं स्वयं सुनायीं। **"करुण तरङ्गिणी" क्या है मानो करुण-रसकी निर्झरिणी है। भाव, भाषा, संगीतके सर्व गुणोंसे अलंकृत—इस बीचमें—ऐसी पुस्तक देखनेमें नहीं आयी।**

एक तो स्वयं कवि, फिर सुन्दर भावमयी कविता, तिसपर स्वयं भावुक और रसज्ञ शास्त्रीजी जैसे कविके द्वारा एक-एक पद सुनकर मैं कृतार्थ हो गया। मैं काव्य-प्रेमी सज्जनोंसे अनुरोध करता हूं कि वे कृपा कर शास्त्रीजीकी इन कविताओंको पढ़ें। वे देखेंगे कि कवितामें जिन बातोंको ढूंढ़नेके लिये वे लालायित रहते हैं वे सभी बातें उनके सम्मुख उपस्थित हैं। मेरा तो ऐसा ख्याल है कि मेरे मित्रने रुचिर प्राचीन शैलीकी रक्षा करते हुए भी अपनी नूतन कल्पनामयी कवितासे आजकलके शुष्क "वाद" सम्प्रदायी कवियोंको

एक प्रकारका चैलेंज सा दिया है। "करुण तरंगिणी" की कविताओं को पढ़ते-पढ़ते भावोंकी ऐसी आनन्दमयी छटा दिखायी देती है मानो मेघ-मण्डित आकाशमें विविध रंग रञ्जित इन्द्र-धनुषकी रमणीय रेखा। मैं हृदयसे शास्त्रीजीके प्रयासकी पूर्ण सफलता चाहता हूं।

माधव शुक्ल

—*—

अनेक सरस ग्रन्थोंके रचयिता, हिन्दी-काव्य-काननमें नव-युगके अन्यतम प्रवर्तक, कविवर

पण्डित सुमित्रानन्दन पन्तकी सम्मति—

प्रियवर शास्त्रीजी !

आपका कृपा-पत्र तथा 'करुण-तरङ्गिणी' की प्रति मिली, धन्य-वाद। 'करुण-तरङ्गिणी' को मैं पढ़ गया हूं। **उसमें सर्वत्र आपकी करुण रससे परिपूर्ण 'स्वान्तः सुखाय' वाणीकी पुकार सुननेको मिलती है।**....मैं आपकी सफलताकी हार्दिक कामना करता हूं।

आपका—

सुमित्रानन्दन पन्त

विश्व-कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके शान्तिनिकेतन, 'विश्वभारती विद्यालय' के भूतपूर्व प्रिन्सिपल, कलकत्ता विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके अध्यक्ष, विविध भाषाओंके पारङ्गत विद्वान् महामहोपाध्याय श्री विधुशेखर शास्त्रीका अभिमत—

प्रिय पण्डित श्रीयुत गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री जो !

हिन्दी साहित्य सन्बन्धे कौनो मन्तव्य प्रकाश करिवार अधिकार जदि ओ वस्तुतः आमार नाइ, तथापि आपनार "करुण तरङ्गिणी" विषये दू-एकटी कथा ना लिखिते पारिलाम ना। आमि जत दूर विचार करिते पारिलाम ताहाते मान हय **बई खानिर नाम सार्थक हइया छे। इहार भाव भाषाके, एवम् भाषा भावके अति मधुर रूपे अनुसरण करिया छे। इहा जे आपनाके हिन्दी साहित्ये यशस्वी करिवे ताहाते सन्देह नाइ।......**

आपनार—

श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य

अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोंके रचयिता, 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक'के विजेता, राष्ट्रीय महाकवि और 'सन्त' श्रीवियोगी हरिजीकी सम्मति—

प्रिय शास्त्रीजी महाराज !

सादर सप्रेम नमोनमः।

उत्तर देनेमें अतिशय विलम्ब हुआ। कदाचित् आप रुष्ट भी हो गये हों, ऐसा लगता है। पर जिस हृदयसे ऐसी सरस करुणा-पूर्ण उत्तम रचना निस्सृत हुई हो, उसमें रोष या असन्तोष कैसे स्थान पा सकता है? तथापि क्षमा प्रार्थी हूं।....आपका 'संस्कृत' पर अधिकार है, संस्कृतके आप सफल कवि हैं, फिर भी हिन्दी भाषामें आप सुन्दर कविता करते हैं और हिन्दी पर आपको अभिमान है, यह वस्तु संस्कृतके विद्वानोंके लिये अनुकरणीय है। आध्यात्मिक जीवन बिताते हुए भी—**आपकी रचना 'करुण तरङ्गिणी' देखकर मुझे बड़ा आनन्द लाभ हुआ। उसमें रसका परिपाक है, प्रसादका प्राचुर्य है। कई पंक्तियां मुझे अत्यन्त मनोमुग्ध कारिणी मालूम हुईं।** ......

विनयावनत—

वियोगी हरि

* नम्र निवेदन *



सहृदय सज्जनके लिये 'कविता' परम सुखदायिनी 'सखी' है। संसारके सन्तापोंसे सन्तप्त मनकी शान्तिके लिये कविता 'कल्पवृक्ष-की छांह' है। कुपथगामी इन्द्रिय रूप घोड़ोंको रोकनेके लिये सुनीति-मयी कविता सजग 'लगाम' है। रोगमें....वियोगमें व्याकुल हृदयका भार हल्का करनेके लिये कविता मूर्तिमती सहायिका जल-वृष्टि है। दुनियांकी उलझन-भरी झंझटोंसे....अपने—परायोंके ओछे छल छिद्रोंसे....ऊबे हुए मूर्छित मानवके लिये कविता स्फूर्तिदायिनी 'संजीवनी बूटी' है। कविता सुखमें उल्लास दायिनी है, दुःखमें धैर्य प्रदायिनी है। कविता इस लोक और परलोकमें भी चिन्मयी श्रीसरस्वतीका सान्निध्य—दायक 'मन्त्र' है। कविता व्यवहार—विज्ञोंका....कूट राजनीतिज्ञोंका 'तन्त्र' है। मनुष्य तो मनुष्य ! ईश्वर के भी वश करनेके लिये कविता अद्‌भुत 'वशीकरण यन्त्र' है। ऐसी शक्तिशालिनी वस्तु कविताका....अथवा काव्यका लक्षण आचार्योंने अनेक प्रकारसे किया है। महाकवि आचार्य दण्डी, पूज्य आचार्य मम्मट, श्रीराजशेखर, साहित्यदर्पणकार श्रीविश्वनाथ कृती तथा पण्डितराज श्रीजगन्नाथने संस्कृतमें और हिन्दीमें हित तरङ्गिणी-कार श्रीकृपाराम, आचार्य केशवदास, आचार्य भिखारीदास, महा-कवि पद्माकरने काव्यके जो लक्षण किये हैं, उनका सार यही है कि

'रसमय वाक्य काव्य है।' आजकल हिन्दीमें अनेक 'वाद' चल पड़े हैं, जिनके खण्डन और मण्डनमें व्यर्थ विवाद और प्रवाद हो रहे हैं। 'शक्ति-वाद' और 'व्युत्पत्ति-वाद' के बलसे कोई किसी पक्षको अच्छा कहता है, कोई किसी को। हम इस विवादमें न पड़करके केवल इतना निवेदन करना चाहते हैं कि अर्वाचीन काव्योंमें भी गुण-दोष हैं, प्राचीन काव्योंमें भी। जिन नवीन रहस्यवादी रचनाओंमें 'रसमयता' है, वे अवश्यमेव माननीय हैं! शिरोधार्य हैं! बस! नवीन ढङ्ग हो, या प्राचीन "रसमय वाक्यको महत्त्व मिलना चाहिये।" क्यों कि :—

'पुराण' मित्येव न साधु सर्वं,
न चापि काव्यं 'नव' मित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते,
मूढःपर-प्रत्यय-नेय-बुद्धिः॥

अस्तु! प्रस्तुत 'करुण तरङ्गिणी' नामक यह काव्य ग्रन्थ कहां तक "रसमय" हो सका है, इस बातके निर्णयका भार हम सहृदय साहित्यसेवियोंपर ही छोड़ देते हैं। यथा शक्ति इसे रसपूर्ण बनानेका परिश्रम किया गया है। इसमें मुख्यतया करुण और विप्रलम्भ शृङ्गार सम्बन्धी रचनाएं ही रक्खी गयी हैं। कई रचनाओंमें नूतन मधुर लयोंकी उद्भावना की गयी है। ३-४ स्थलोंमें स्पष्ट अर्थ-बोधके लिये २ या ४ मात्राएं घटा-बढ़ाकर उपजाति छन्दोंका प्रयोग किया गया है। हिन्दीमें प्रचलित विदेशी भाषाके शब्दोंमें नुक्ता नहीं

लगाया है। हम इसे व्यर्थ और अनुचित समझते हैं। नुक्तेपर 'नुक्ताचीनी' करनेका... उसके पक्ष-विपक्षमें कारण प्रदर्शित करनेका यह अवसर नहीं है, पर 'नुक्ता-विध्वंसक-मण्डल' के एक कार्यकर्ता की हैसियतसे केवल अपना सिद्धान्त प्रकट कर देना उचित समझते हैं। अन्य अनेक पुस्तकोंकी तरह यह भी बहुत वर्ष पूर्व निर्मित हो चुकी थी, पर :मन्द भाग्यसे....घर-बाहरकी विकट झंझटोंसे....“स्यमन्तक मणि” की तरह गहनगुफाके अन्धकारमें ही यह पड़ी रही। अब सर्वशक्तिमान् श्री भगवानकी कृपासे यह प्रकाशित हो रही है। इस स्मरणीय अवसरपर हम यहां कोई बड़ी भूमिका लिखना नहीं चाहते। केवल दो-चार शब्दोंमें उस कविता देवीके प्रति अपना प्रगाढ़ स्नेह प्रकट कर देना चाहते हैं जिसके चरणोंपर २५ वर्षोंसे भी अधिक समयसे की जानेवाली विविध वाङ्मयकी सेवासे प्राप्त गुण-प्रसूनोंको निरन्तर हमने चढ़ाया है, घरवाले और बाहरवालोंके नाराज होनेकी कुछ भी परवाह न कर....किवाड़ा बन्द करके 'पागलोंकी तरह' घण्टों....पहरों जिसके ज्योतिर्मय दिव्य रूपका ध्यान किया है। उस दयामयी स्नेह मयी माधुर्यमयी “मां” के मञ्जुल चरण-कमल सदा इस मस्तकपर मुद-मय मधु-वर्षा करते रहें। उनके आशीर्वाद-परागसे इस....'करुण तरङ्गिणी'को ऐसा सौरभ प्राप्त हो जिससे चिरकाल तक दिग्दिगन्त निवासी सुधीजन इससे आप्यायित होते रहें। विमल वीणापर सत्वर खेलनेवाली भारतीकी उंगलियोंकी दिव्य गति इसे 'प्रगति' प्रदान करे। राष्ट्रभाषा हिन्दीके महान् उर्वर क्षेत्रमें प्रवाहित हुई, यह तरङ्गिणी

संस्कृत और प्राकृत उभय तटवासी सज्जनोंको तृप्त करती हुई, अनन्त जलधि-समीप निवासी, जनता-जनार्दनसे मिले, यही शुभ-कामना है। अन्तमें हिन्दीके महान् साहित्य सेवियोंसे....सम्माननीय सम्पादकोंसे, सादर, सप्रश्रय, यह नम्र निवेदन है कि यह वस्तु आपकी ही है, इसमें यदि दोष हों, तो उन्हें क्षमाकर गुणोंको ग्रहण कीजिये। दोष हमारे समझे जायं,····और गुण उन आदरणीय हिन्दी-साहित्य सेवियोंके, जिनके स्पृहणीय सत्सङ्गसे हम हिन्दीके एक तुच्छ सेवक बन सके हैं। एक राष्ट्र भाषा—सेवकके नाते....चिर हिन्दी-समुपासक सारस्वत ब्राह्मणके नाते....पं० बालमुकुन्द शास्त्री, श्रद्धेय पं० गोविन्दनारायण मिश्र, पूज्य पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रके सम्बन्धोके नाते हम आपके हैं। इसलिये—

"सुनो हो विटप! हम पुहुप तिहारे अहै,
राखि हौ हमैं तो सोभा रावरो बढ़ावैंगे।
तजि हौ हरखि कै तौ बिलग न मानै कछू,
जहां-जहां जैहैं तहां दूनो जस गावैंगे।
सुरन चढ़ैंगे नर-सिरनि चढ़ैंगे नित,
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे।
देसमें रहैंगे परदेसमें रहैंगे,
काहू भेसमें रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥

यदि अनेक त्रुटियोंकी, कुत्सित कमज़ोरियोंकी, दयनीय दोषोंकी घोषणाकी जाय तो यह वक्तव्य है कि—

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि,
मित्रावसान-समये विहितोदयोऽपि।
'चन्द्र' स्तथापि हर-वल्लभता मुपैति,
नैवाश्रितेषु गुण-दोष-विचारणा स्यात् ॥

इसलिये प्रणय-पूर्ण प्रार्थना है कि—

'भूल' भूलकर, कर कृपा, कृपा-सिन्धु निज जान।
अणु गुण भी 'गाङ्गेय' के ग्रहण करें गुणवान ॥

बस !

आश्विन शुक्ल विजय दशमी
श्रीविक्रम सं० १९९७
गुरुवार

निवेदक—
विनीत
गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

समर्पण

परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय, रमणीय-हिन्दी-कार्य आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी-महोदयकी पवित्र स्मृति और सेवामें

हे हिन्दी-काननके कल्पतरु !

आपके कल्पनातीत विविध गुण-गणोंसे आकर्षित यह सेवक आज इस '**करुणतरङ्गिणी**' को आपकी सेवामें सादर, स-विनय, स-स्नेह, समर्पित करता है, कृपया इसे स्वीकार कीजिये। मान्यवर ! समय-समयपर प्राप्त आपके "प्रिय पत्रों" से इस क्लान्त हृदयको जो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, उससे यह आपका चिर-ऋणी रहेगा। कई विश्वविद्यालयोंकी उच्च परीक्षाएं पास करनेके अवसर पर भी इस हृदयको उतना हर्ष नहीं हुआ, जितना आपके स्नेहमय 'सम्मति-पत्र'के प्राप्त करनेपर हुआ। उस समय इसे ऐसा अनुभव हुआ मानो सबसे बड़ी यूनिवर्सिटीकी....सबसे कठिन परीक्षा....आज ही पास की है। स्वजन-बन्धो ! कारुण्य-सिन्धो ! इस लेखकके यह लिखने पर कि—

"दौलतपुर" में अपनी दौलत,
कभी देखने आऊंगा।
इस "बबूल" को चन्दन तरुसे,
'चन्दन' कभी बनाऊंगा ॥

आपने जो कुछ लिखा, उससे यह कृत-कृत्य ! हो गया। पर क्रूर कालके कराल आघातसे वह आशा भङ्ग हो गयी। उन अरमानोंका खून हो गया ! उस घावपर शीतल जल छिड़कनेका-सा यह कुछ लघु प्रयत्न है।

हे 'हिन्दी कुमारसम्भव'कार ! आपके 'कोविद्-कीर्तन' की मधुर ध्वनिसे धन्य ! हुए ये कान, आपके 'साहित्य-शीकर' से शीतल हुआ यह हृदय, आपके 'सरस्वती-जल-सेचन'से पुलकित यह लेखनी, आपके 'सम्पत्ति-शास्त्र' से सम्पन्न यह बुद्धि 'काव्य-मञ्जूषा' में रमणीय रत्नोंकी रश्मियोंसे रञ्जित ये नेत्र, अमन्द आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। हे परम प्रकृति प्रेमी ! वन्दनीय कविवर, आपकी अभिनन्दनीय कविता-सरिताने, संस्कृत, ब्रजभाषा, बैसवाड़ी, खड़ी बोली-रूप चारो दिशाओंमें सफलतापूर्वक विजय-घोषणा की है। हे व्यङ्ग्यमय वाण मारनेवाले ! अल्हड़ अल्हइत ! आप धन्य ! हैं। हे शिवमय ! हे शिव-सङ्कल्पकारक ! शैव ! अस्त-व्यस्त 'हिन्दी-नीहारिका' को सङ्गठित रूप देनेवाले आप 'शान्तिमय शीतल गगन' हैं। धनका सदुपयोग करनेवाले ! हे आदर्श दानी ! द्विजवर ! लोलुपता और कामुकतासे गिरे हुए अनेक ब्राह्मणोंको 'विद्याव्रत' और 'पत्नीव्रत' का पाठ पढ़ानेवाले आप सच्चे 'स्मृतिकार' हैं। हे परम मनस्वी मान-धन ! मदमत्त धनियों और उन्मत्त अधिकारियोंकी परवाह किये विना सम्पादक-सौर-जगतमें अपनी समालोचना-किरणोंसे देदीप्यमान आप 'दिवाकर' हैं। हे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र ! आदेश-विरुद्ध....या अड़बड़ङ्ग ढङ्गसे काम करनेवाले अ-विनीत



वर्तमान हिन्दी भाषाके सर्वश्रेष्ठ उन्नायक, भूतपूर्व 'सरस्वती'-
सम्पादक, श्रद्धेय आचार्य
स्वर्गीय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

उपासकोंके दमनकारी आप 'दुर्वासा' हैं। हे प्रचण्ड शक्तिशालिन्! हे दुर्जनोंके मुख-मुद्रण करनेवाले! हे साहसिक! आप हिन्दी-अहितकर यज्ञकर्त्ताओंके छक्के छुड़ा देनेवाले अकाट्य युक्तियोंसे उनके सहायकोंके धुर्रे उड़ा देनेवाले महावीर "वीरभद्र" हैं। सब स्वरूपोंमें आप धन्य हैं! आपकी जय! हो। दयामय! देव! द्विवेदी-मेलेके अवसर पर काशी और प्रयागमें मिलनेके बाद फिर आपके दर्शन नहीं हुए....स्वप्नको छोड़कर। स्वजनोंके मोहको त्यागकर स्वर्गमें विचरनेवाले! कभी-कभी सुनहले स्वप्नोंमें झलकनेवाले! हे दिव्य पितर! इन प्रेम-भावनाओंको स्वीकार कीजिये, इस स्व-जनमें आध्यात्मिक शक्तियोंका सञ्चार कीजिये, इस कातर प्राथनाको सुनिये :—

यह ममतामय, भक्तिमय,
लें ! स-मन्त्र स्वयमेव।
प्रिय 'गाङ्गेय' वियोग-तिल,
करुण - 'जलाञ्जलि' देव ॥

बस!

भवदीय—

स्नेह-भाजन

गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

श्रद्धाञ्जलि



परमपूज्य श्रद्धेय स्वर्गीय माता-पिताके चरण-कमलोंमें सर्व-प्रथम सादर श्रद्धाञ्जलि, जिन्होंने इस लेखकके शरीरको जन्म दिया। अनन्तर हृदयकी सम्पूर्ण भक्ति और प्रगाढ़ अनुरागसे श्री भगवती गङ्गाजीके पाद-पद्मोंके प्रति श्रद्धाञ्जलि है, जिन्होंने नौका-दुर्घटनामें करीब डेढ़ सौ आदमियोंके मर जानेपर भी इस कविके 'अतिशिशु शरीर' की रक्षा कर इसे पुनर्जन्म दिया। पूज्यपाद गुरुवर **महामहोपाध्याय तात्याशास्त्री-उपनामक श्रीरामकृष्ण शास्त्री महोदय** तथा अन्य सम्पूर्ण गुरुजनोंको श्रद्धा-पूर्ण प्रणाम, जिन्होंने विविध विद्याओंके प्रकाशसे इस अन्धकारमय हृदयको प्रकाशित और संस्कृत किया। उन महान् हिन्दी साहित्य-सेवियोंकी सेवामें बार-बार प्रणति-परम्परा! जिनके प्रोत्साहन, शिक्षण और सत्सङ्गसे इस लेखककी हिन्दी-सेवामें विशेष अभिरुचि हुई, जिनमें कुछ महानुभावोंके नाम ये हैं:— श्रद्धेय पं० गोविन्द नारायण मिश्र, साहित्याचार्य पं० किशोरीलाल गोस्वामी; आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, कवि चक्रवर्ती पं० देवीप्रसाद शुक्ल, साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा, एम्० ए०, बाबू जगमोहन वर्मा, कविवर बाबू जयशङ्कर प्रसाद, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए०, श्रद्धास्पद आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, पूज्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, म. म. पं० सकलनारायण शर्मा, श्री. पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री. पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे प्रभृति।

बङ्गालके प्रख्यात चित्रकार **श्रीपूर्णचन्द्र चक्रवर्ती बी०ए०** महाशयको भी धन्यवाद ! जिन्होंने इस पुस्तकके अनेक कलापूर्ण तिरंगे चित्रोंका निर्माण किया है। इस पुनीत अवसर पर उन ··· **काशी-वरणा-तट निवासी, परमपूज्य महात्मा, योगिवर, श्रीस्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती महाराजकी** दिवंगत आत्माके प्रति भी सादर स्नेह पूर्ण प्रणाम है, जिनको अनेकों भविष्य वाणियां हमारे जीवनमें सोलहो आने सत्य ! निकलीं, जिनकी स्नेहमय शिक्षा और सत्सङ्गसे इस जीवनका निर्माण हुआ। अन्तमें उन "मधुर मूर्तियों" के प्रति माधुर्यमय हार्दिक श्रद्धाञ्जलि है, जिनके दर्शनसे····जिनके अ-दर्शनसे, जिनके भावोंसे····जिनके प्रभावोंसे कई कविताओंकी उत्पत्ति हुई। सबके अन्तमें उस अनन्त गुणमयी **'प्रिय प्रकृति'** को प्रणाम है जिससे हमें सब कुछ मिला,

"ज्योत्स्नायै चेन्दु रूपिण्यै सुखायै सततं नमः"

का जप करते हुए जिसके स्वर्ण-प्रभातको देखा, जिसकी रजत-सन्ध्या से खुल खेले, जिसकी कुसुमित तरु-वल्लरियोंसे रहस्यमय बातें कीं; जिसकी अ-सीममें मिलनेवाली सरिताओंका रस-पान कर मञ्जुल 'जल-तरङ्ग' की ध्वनिसे 'ध्वनिमय' हो गये।

विनयाऽवनत

गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

महाकवियोंके महनीय विचार :-



अविदित-गुणाऽपि सत्कवि-भणितिः ,
कर्णेषु वमति मधु-धाराम् ।
अनधिगत-परिमलाऽपि हि ,
हरति दृशं मालती माला ॥

—महाकवि सुबन्धु ।

* * *

याता यान्ति च यातारो लोकाः शोकाधिका भुवि ।
काव्य सम्बन्धिनी कीर्तिः स्थायिनी निरपायिनी ॥

—महाकवि अनन्तदेव ।

* * *

लोकोत्तरा च 'कृति' राकृति रार्त-हृद्या ।
विद्यावतां सकल मेव गिरां दवीयः ॥

—श्री पण्डितराज जगन्नाथ ।

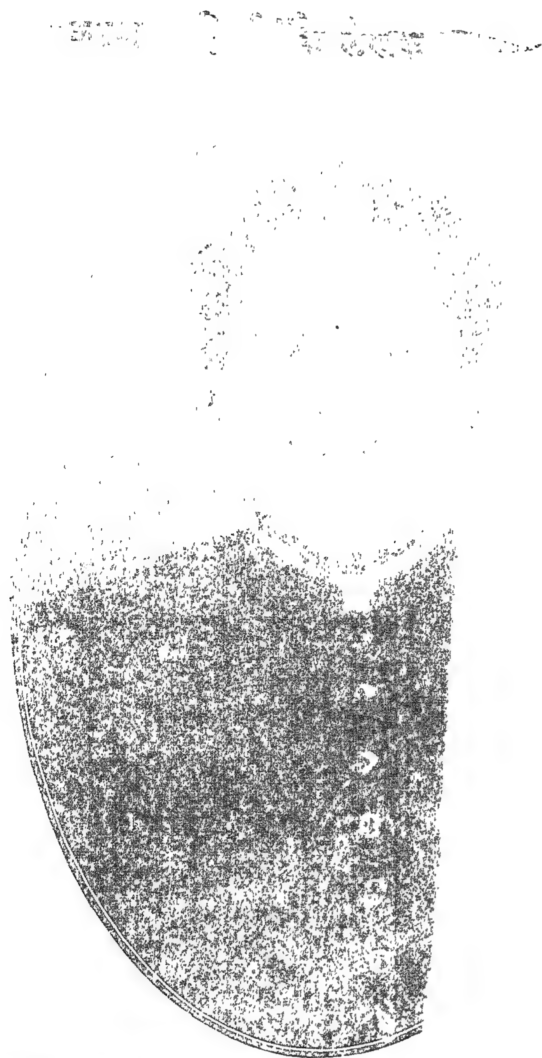
उत्फुल्ल-गल्लै रालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम् ।
जानाति हि पुनः सम्यक् कवि रेव कवेः श्रमम् ॥

—श्री त्रिविक्रम भट्ट ।

* * *

जाको लहि कछु लहनकी, चाह न हियमें होय ।
जयति जगत पावन-करन, 'प्रेम' बरन यह दोय ॥

—श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।



काशी विद्यापीठ और हिन्दू विश्वविद्यालयके भूतपूर्व अध्यापक, साहित्य-
मार्तण्ड, [illegible] काव्यतीर्थ, आयुर्वेद शास्त्री,
पं० गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री, एम्० आर० ए० एस्०

[illegible] विचार :—

अवि[illegible],

कर्णेषु वमति मधु-धाराम्।

[illegible] हि,

हरति दृशं मालती माला ॥

—[illegible]वि सुबन्धु।

*   *   *

याना यान्ति च यातारो लोकाः शोकाधिका भुवि।

काव्य सम्बन्धिनी कीर्तिः स्थायिनी निरपायिनी ॥

—महाकवि अनन्तदेव।

*   *   *

लोकोत्तरा च 'कृति' राकृति रार्त-हृद्या।

विद्यावतां सकल मेव गिरां दवीयः ॥

—श्री पण्डितराज जगन्नाथ।

उत्फुल्ल-गल्लै रालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम।

जानाति हि पुनः सम्यक् कवि रेव कवेः श्रमम् ॥

—श्री त्रिविक्रम भट्ट।

*   *   *

जाको लहि कछु लहनकी, चाह न हियमें होय।

जयति जगत पावन-करन, 'प्रेम' बरन यह दोय ॥

—श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

"करुण तरङ्गिणी" के लेखक



काशी विद्यापीठ और हिन्दू विश्वविद्यालयके भूतपूर्व अध्यापक, साहित्य-मार्तण्ड, कविचक्र-चूडामणि, काव्यतीर्थ, आयुर्वेद शास्त्री, पं० गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री, एम्० आर० ए० एस्०

(२)

दग्ध-गृहोंमें जले हुओंकी,
'जलन' जानते जन जिससे।
अस्पतालमें आर्त्त-ध्वनि सुन,
सेवा-सहमत मन जिससे॥
समय-समयपर जीव-जीवमें,
जिसका आये ज्वार।
वह समाजका जीवन, हितकर,
'करुणामय' का प्यार॥

(३)

विजित, देशके इस कण-कणमें,
जो वह 'करुण'—प्रयाग।
जिसमें गङ्गा यमुना दोनों
अविरल बहतीं जाग॥
हृदय-नयन ये करुणा-कम्पित,
मानें जिसमें हार।
वह 'पीड़ामय' मिले मोहमय,
'करुणामय' का प्यार॥

(४)

आफतमें अपने पर जैसी,
कातर करुणा होती है।
उसकी 'गीली स्मृति' जो रखता,
जिसमें प्रिय-ध्वनि रोती है॥
जाग जाग उठता है जिससे,
यह सोया संसार।
वह विषाद-उन्माद-खेदमय,
'करुणामय' का प्यार॥

(५)

अन्तर-अन्तरकी पीड़ाको,
जो अन्तरवासी जाने।
जिससे छू 'गाङ्गेय' जीव ये,
जीवनको पावन मानें॥
करुणामय ही कर देता जो,
सबको बनकर हार।
वह अनुभवमय, मिले सिद्धिमय,
'करुणामय' का प्यार॥





प्रवासी के उद्गार

(१)

अब ! उस प्रिय 'कल्पलता' से ।
'पारिजात' विरहित होगा ॥
वह नन्दन वन तज करके ।
दूर···भूमि जाना होगा ॥

(२)

दिन रैन अलग ये होंगे ।
दिन-रैन अलग रहना होगा ॥
मुग्ध मयूर····मयूरी को ;
दुख अलग····अलग सहना होगा ॥

(३)

इस जगमें रहने पर भी,
'जीवन' से दूर निवासी ॥
प्रियतमके विरह-अनलसे,
पिघलेंगे, प्राण प्रवासी ॥

(४)

वह····फूलोंकी आंख—मिचौनी ।
वह····तितलोकी केलि सलोनी ॥
वह····छिन····छिन, वनमें छिपना ।
यह सब, अब होगा····सपना ॥

(५)

शुक-विरहित होगी मैना ।
शुक, तड़फेगा बिन····मैना !
यह ! 'बगिया' सिसक—सिसक कर ।
बस ! मूंदेगी निज····नैना ॥

(६)

स दूर····देशमें क्या ? होगा ।
श्रम, ताप, खेद, नितही होगा ।
छै मास, वहां रजनी होगी ।
छै मास, वहांका दिन होगा ॥

(७)

प्रिय "गाङ्गेय"—प्राण विकम्पित ।
प्राणोंसे दूर..................रहेंगे ॥
हा ! छिन....छिन छटपट करते ।
अब........जलबिन, मान रहेंगे ॥

(८)

'घन' रिक्त बनेगा रो........रो ।
ध्वनि सिसकेगी किन....किनमें ॥
वह 'बिजली' तिल-तिल खो....खो ।
मिट जायेगी पल........छिनमें ॥



जंगलमें आग लगी है



जङ्गलमें आग लगी है ।

जङ्गलमें०

सुलग....सुलग कर बढ़ती जाती,
मोहक ज्योति जगी है जङ्गलमें,
जङ्गलमें आग लगी है ॥ जङ्गलमें०

हृत्पल्लव पल पल बढ़ सिकुड़े,
विकट हवा उमड़ी है ।
तप्त देह सन्तप्त चित्त यह,
'ज्वाला' स-जल खड़ी है ॥ जङ्गलमें०

मञ्जु मयूर उड़े चकराते,
चकित चकोर युगी है ।
फड़क रहा है 'कीर' और हां,
विकल उरग-उरगी है ॥जङ्गलमें०

हरे हरे कितने तरुओंका,
रक्त पान करती है ।

झुलस-झुलस कर घास फूसको,
धधक-धधक जलती है ॥ जङ्गलमें० ॥
थर-थर कांपें 'बिल्व' तापसे,
गिरि-वापी खौली है।
विचलित गन्धक-गिरिपर उसने,
तेज कटारी तौली है ॥ जङ्गलमें० ॥
गल—गल 'लाख' विविध गड्हों में,
धूम्रमयी ढलती है।
सिहर सिहर उठ रोम खड़े ये,
धड़कन 'वह' धड़की है ॥ जङ्गलमें० ॥
'अन्तराल' यह जले 'राल' सम,
तीखी प्यास लगी है,
जन्म जन्मसे ध्वंस-कारिणी,
क्षय-रस मध्य पगी है ॥ जङ्गलमें० ॥
पाहि, पाहि, प्रभु ! विषम अग्निसे
कबसे हा ! सुलगी है, जङ्गलमें।
जङ्गलमें आग लगी है, ॥ जङ्गलमें० ॥



प्राणोंका संघर्ष



(१)

प्रणमें, प्रियमें औ प्राणोंमें,
सङ्घर्ष लगा पाषाणोंमें।
उससे निकली 'चिनगारी'-सी,
'स्मृति' बिजली सी मदकारी-सी ॥

(२)

'चुम्बक'-सी आकर्षक थी वह,
'आंधी'-सी वह प्रेरक थी।
'गन्धक'-सी संशोधक थी वह,
'विद्या'-सी वह बोधक थी ॥

(३)

विधि-निषेध दोनों थे उसमें,
विधि-निषेधसे पर वह थी।
पास खड़ी थी मधुर भावना,
मैं कातर था, वह कातर थी ॥



बकुल-वार्त्तालाप



बकुल !

तुम हो एकरङ्गी,

'रत्न' से तरुमें जड़े ।

रसिक-रञ्जन,-भ्रमर-तर्पण,

क्या कहें ? गुण हैं बड़े !!

पर—,

हमारे सिर चढ़े तुम,

बालसे अड़ने लगे ।

डालते ही बस गलेमें,

हन्त ! तुम गड़ने लगे !!

गन्ध है,

पर छिद्र हैं बहु,

अङ्ग ऐसे हैं कड़े ।

कोर लगते ही तुम्हारी,

कान होते हैं खड़े !!

ताप लगते ही जरा सा, सूखने तुम भी लगे !

सूंघते ही बस ! यहां प्रिय! हन्त ! तुम चुभने लगे !!

* घायल कोकिल *



(१)

दिन बीत गये गिनते कितने ?
नहीं आयी बहार यहां फिरसे ।
यह बाग जो सूना हुआ सो हुआ,
पनपा, न फला, न सजा चिरसे ॥
उन व्याधोंकी टोलीसे लुण्ठित हो,
इसके तरु-वृन्द रहे गिरसे ।
यह 'घायल कोकिल' देख रहा,
युग नैन हुए अब अस्थिर से ॥

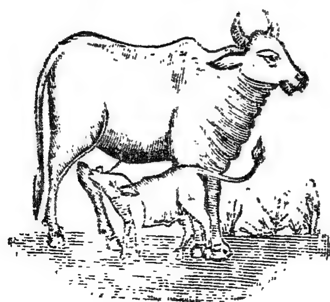
(२)

उस गर्दिशमें कितने ही विहङ्गम,
बद्ध हुए अवरुद्ध हुए ।
कुछ मौतके घाट उतारे गये,
निज 'नीड़' के दाहसे क्रुद्ध हुए ॥

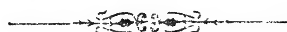
नहीं आयी दया उन जालिमोंको,
कितने ही यहांपर 'बुद्ध' हुए।
इन आंसुओंसे वे धुले फिर भी,
उनके हिय हाय! न शुद्ध हुए॥

(३)

इस घोर निराशामें भी बिजली,
पथ-दर्शक-सी चमकेगी कभी।
प्रिय 'गाङ्गेय' घायल कोकिलके,
मनमें जो लगी सो पुरेगी कभी॥
इन दीनोंकी आह 'दयामय' के,
दरदी श्रवणोंमें पड़ेगी कभी।
इन आंसुओंसे सिंची भूमिमें हां!
वह प्यारी 'बहार' फिरेगी कभी॥



दुख-वर्षामें आयी वर्षा



(१)

दुख-वर्षामें आयी वर्षा,
चिथड़े भी ये भींग चले !
भीगे नयन, हृदय यह भीगा,
नगर-ग्राम सब भींग चले ॥
'भरे हुए' हम उन मेघोंसे,
भाव भुलाये भर लाते।
'इन्द्र-धनुष' से उग....उगकर, हम,
आज स्वयं मिटने ::जाते ॥

(२)

रोग-शोकका गर्जन-तर्जन,
यहां नित्य ही है होता।
चिन्ताकी धाराएं बहतीं,
दिन दिन दुर्दिन है रोता ॥

कभी जलन, उम्मसमें घुटकर,
प्राण विकलतामें सोता।
सुहृद्-वियोग, कभी अति भीषण,
'वज्रपात' भी है होता॥

(३)

नद्-नदियां भी उमड़ उमड़कर,
हमें डुबाने हैं आतीं।
मच्छर, जोंकें, हवा विदेशी,
बीमारी नित फैलाती॥
नहीं सहारा हमें नावका,
निःसाधन हो दुःख सहे।
पास खड़े वे 'क्रूर जहाजी',
दिन....दिन दुर्गति देख रहे॥

(४)

इस वर्षामें ही 'हुलसी' की,
वह 'तुलसी', मुरझायी थी।
इसमें ही उस 'लोकमान्य' की,
मांने रथी उठायी थी॥

बार बार बाढ़ोंसे इसमें,
गांव गरीबोंके बहते।
कितने प्राणी हा ! स्वदेशके,
नाम-शेष होकर रहते !!

(५)

ईर्ष्या-मत्सरके हुड़कोंसे,
द्वार बन्द गुणवानोंके।
लोभ-प्रमाद-मत्त वे मुख हैं,
मुड़े हुए धनवानोंके ॥
विपद्-ग्रस्त अपठित जनता वह,
समझ नहीं सकती है हाय !
किसे ? सुनायें इस वर्षाकी,
व्यथा-कथा 'सहृदय' असहाय ॥

(६)

दो दिनकी इस दुनियांमें हां,....
हम तुम मिलकर बिछुड़ चले।
हन्त ! 'अतृप्ति शिला' रख सिरपर,
अन्धकारमें सिकुड़ चले ॥

अरमानोंसे भरा हृदय ले,
जिस तिसपर नित आश्रित हो।
रज-कण सम हम आज यहांसे,
खुद ही चले तिरस्कृत हो॥

(७]

कहलो, जिसको जो कहना हो,
सब कुछ सुन हम जाते हैं।
क्षमा मांगकर निज भूलोंकी,
आज भूलने जाते हैं॥
वरदानोंको औ शापोंको,
पुण्योंको उन पापोंको।
आत्मसात कर अब हम जाते,
संग लिये संतापोंको॥

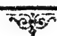
(८)

प्रिये! प्रकृति मत शोक यहांपर,
पीछे करना कुछ मनमें।
'बिजली' थी चमकी वह पल भर,
चिन्मय था प्रकटा जड़में॥

आओ ! आओ ! भीज...भीजकर,
क्षण भर आज यहां गायें।
फिर 'गाङ्गेय'-गगन-ध्वनि सुनकर,
हंस सदृश हम उड़ जायें ॥



मनकी उधेड़-बुन



(१)

भरी हुई हैं बड़ी हसरतें,
मनमें, नहीं ठिकाना है।
किन्तु न जाने कब किसने हा!
कहां यहां मर जाना है॥
धनकी, यशकी, रमणी-मणिकी,
सुतकी, सुखकी इच्छा है।
इच्छामय है चित्त कहें क्या?
कैसी? कैसी? इच्छा है॥

(२)

क्षणभर भी यह चञ्चल मानस,
इच्छा-रहित नहीं रहता।
कहां कहांकी व्यर्थ विषयकी,
इच्छा-नालीमें बहता।

तुच्छ तुच्छसी बातोंमें बझ,
घंटों यह पच मरता है।
जीवन-रणमें पीछे करके,
शत्रु-कार्य यह करता है॥

(३)

स्वयं सोच कुछ और करो नित,
चित्त और ही सोच करे।
स्वयं 'समुन्नति'—हित कुछ सोचो,
मन 'उधेड़बुन' और करे॥
प्रिय 'गाङ्गेय' कार्य-क्रम निश्चित,
जो, हो, द्रुत उसमें लगना।
उन्मन...उन्मन रह करके बस !
'मन' की गति लखते रहना॥



* अरविन्दका घोष *



(१)

चढ़कर तरङ्ग सिरपर,
यह लोक-चित्त हरता।
कोमल, खिले, दलोंमें,
पावन पराग भरता॥

इस मन्द, तर, हवामें,
मकरन्द-कान्ति करके।
अलिवृन्दके बहाने,
अरविन्द 'घोष' करता॥

(२)

कमला-प्रसाद पाकर,
अरविन्द झूमता है।
मुख मञ्जु देख जलमें,
प्रिय पत्र चूमता है॥

सौरभ सने हृदयमें,
छिन छिन उमंग भरके।
कवि-वृन्द दर्शनोंको,
'हरि' हाथ घूमता है॥

(३)

तम-पुञ्ज टोहता है,
रवि-रश्मि जोहता है।
सिकुड़ा हुआ तपस्वी।
मन भोर मोहता है,
खिलकर दिनेश-करधर,
मधु मञ्जु नैन भरकर।
देखो, ! 'मृणालिनी'से,
"अरविन्द" सोहता है॥

(४)

बक छोड़, हंस-मनपर,
अरविन्द यह चढ़ा है।
सरमें सुगन्ध भरकर,
जल-बाल यह बढ़ा है॥

खल-त्याग, साधु-सेवा,
गुणका प्रचार करना ।
'अरविन्दनेत्र'से ही,
अरविन्द यह पढ़ा है ॥



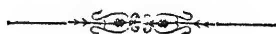
मझधारकी नाव



मत-भेदमें भूल गये पथको,
जल-दस्युओंसे अब पार नहीं।
सब साथी हुए श्रम-क्लान्त यहां,
तरुणोंमें भी तेज प्रचार नहीं ॥
मजबूरीकी हालतमें हैं गिरे,
इस पार नहीं...उस पार नहीं।
मझधारमें नाव पड़ी है प्रभो !
पतवार नहीं...एतवार नहीं ॥



चिर दिन बाद....मिलन



बहुत दिनोंके बाद आज हम,
तुमसे मिलने आये हैं।
तुमपर बीती...तुमसे सुनने,
कुछ गुनने हम आये हैं॥

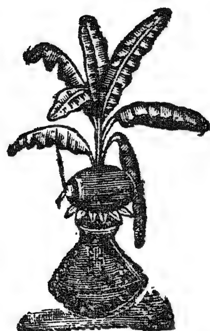
प्रिय! तुमसे उस...उस अतीतकी,
कथा सरस सुनने आये ।
निजपर बीती...करुण-कहानी,
तुम्हें सुनाने हैं आये ॥

अङ्कुर निकला था आशाका,
प्रेम-वारिसे पनपा था ।
जगकी निष्ठुरतासे झुलसा,
उसे दिखाने आये हैं॥

'अभिलाषा'-सी सूख गयी वह,
'ओस' हृदयके पल्लवपर ।
'दाग' पड़ा उसका धुंधला सा,
उसे मिटाने आये हैं ॥

इस मानसमें मौन मग्न हो,
'चिन्मय' लखने आये हैं ।
प्रिय 'गाङ्गेय' प्रेम-मुक्ता हम,
जगमें चुनने आये हैं ॥





* ऐसी थीं वे....घड़ियां *



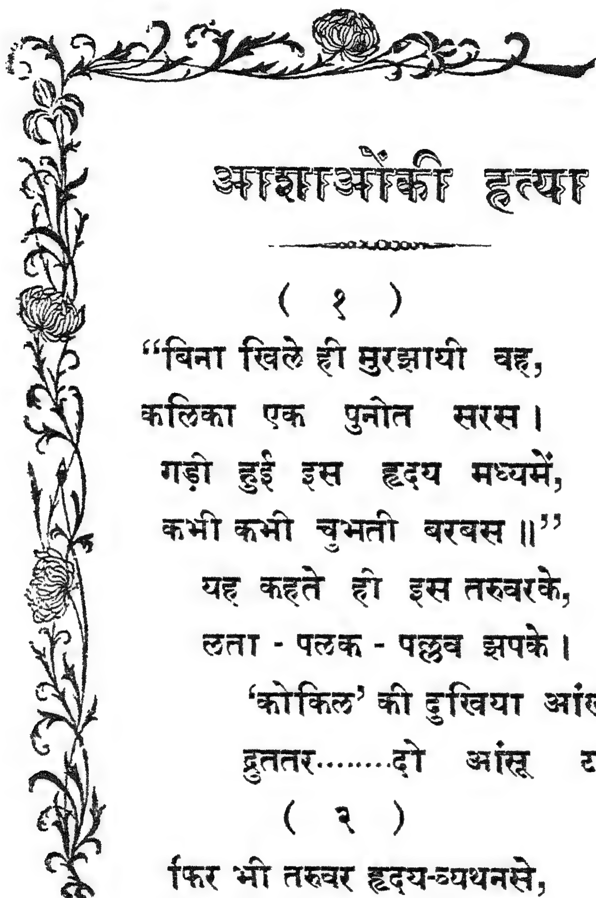
ऐसो थीं वे...घड़ियां !
अचला भी यह 'चल' सो थी तब,
ऐसी थीं वे...घड़ियां !!
जिन घड़ियोंमें नदी और नद,
एक हुए तज कड़ियां !
ऐसो थीं वे...घड़ियां !!
जिन घड़ियोंमें जगीं वृष्टिसे,
गगन-धरणिकी स्मृतियां !

'रोम' देखते पुलक-चित्र तब,
पीते "किसलय" कणियां !
अन्तरङ्ग मय आतम-मिलन सी,
सुधा - स्पर्श - चौकनियां।
ऐसी थीं वे घड़ियां !!

टकराते थे 'विल्व' पासमें,
वनमें विहंसी मणियां ।
चल 'अचला' पर चलित 'मेघ' वह,
घन......घन धारावलियां !
ऐसी थीं वे घड़ियां !!

पूर पूर कर, सरिता-सागर,
धारें :— मुक्तावलियां ।
प्रिय 'गाङ्गेय' गिरा सी सुरभित,
मुदित कुसुम वन-थलियां ।
ऐसी थीं वे घड़ियां !!





आशाओंकी हत्या

(१)

"बिना खिले ही मुरझायी वह,
कलिका एक पुनीत सरस।
गड़ी हुई इस हृदय मध्यमें,
कभी कभी चुभती बरबस ॥"
यह कहते ही इस तरुवरके,
लता - पलक - पल्लव झपके।
'कोकिल' की दुखिया आंखोंसे,
द्रुततर........दो आंसू टपके ॥

(२)

फिर भी तरुवर हृदय-व्यथनसे,
प्रकटा........अन्तर्द्वन्द्व-अनल ।
भस्म ! हो गया भाव-वृक्ष वह
'भस्म' वहांपर हुई विकल ॥

उसी भस्मसे उमड़ी झर झर,
कलिकाकी करुणा-सरिता ।
बहे भाव सब जलमय होकर,
जली हुई वह "तृषा" चिता ॥

(३)

कैसी कैसी आशाएं थो !
ग्राम-वासियोंके मनमें ।
पर, इस भीषण जल-प्रवाहमें
हन्त ! बहीं वे सब क्षणमें ॥

(४)

पुत्रार्थीकी उत्सुक बाहें,
मृत्यु बाद भी उठो रहीं ।
माताकी ममतामय आंखें,
शिशु-दर्शन-हित चढ़ी रहीं ॥

(५)

अर्थीकी उत्कट उत्कण्ठा,
अर्थ-हेतु ही लगी रही ।

प्रेमोकी "प्रिय" में प्रलोभमय,
प्रीति अ-पूरित जगो रही ॥

(६)

पठनार्थीकी पठन-पिपासा,
व्याकुलतासे बढ़ी रही।
पलमें ही पर, देखा सबने,
मौत वहांपर चढ़ी रही ॥

(७)

कीर्ति-कौमुदीके 'चकोर'की,
किसलयपर अङ्कित बातें।
बरसोंकी वह कठिन "साधना"
बही एक दिन कर घातें ॥

(८)

टूक ! टूक ! हो गया हृदय वह
नन्हा-सा कोमल उसका।
आशाओंकी इस हत्यापर
रो...रोकर 'नभ' भी सिसका ॥

(९)

उन्नति-उन्मुख 'पारिजात' तरु,
उगा वहांपर था हुलसाय।
कुटिल कंटकोंकी करनीसे,
पर, न पनपने पाया हाय !!

(१०)

लता-गुल्मके सहित बहा वह,
रहा, न बाकी नाम-निशान।
सङ्ग बहे पक्षी भी कितने ?
आशाओंका कर बलिदान॥

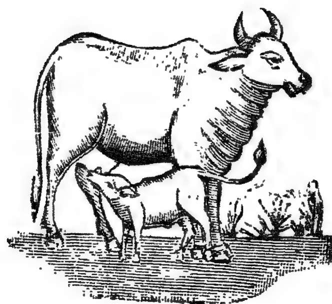
(११)

आशाओंका बध-स्थान यह,
यहां न आशाएं करना।
यहां निठुरता-नदी लहरती,
मत हुलास मनमें भरना॥

(१२)

यही सुनाती 'सनसन' ...करके,
हवा यहांकी पागल हो।
इसी लिये रुक गयी 'कलम' यह,
'जीभ' कटाकर घायल हो ॥





शरत्की शान्तिमयी शोभा

(१)

धरा और आकाश दोनों मिले ये,
मनोंकी मनों मैल धोके नहाके ।
शरत्की अनूठी अहो ! आज शोभा,
यहां छा रही है, वहां छा रही है ॥

(२)

नहीं कास, कार्पास ये पास फूले,
शरत्की नयी मञ्जु 'मुसकान' ये है ।
अति स्वच्छ, मीठे, बहे ये न 'सोते',
सलोनी शरत्के 'जगे' भाव ये हैं ॥

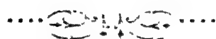
(३)

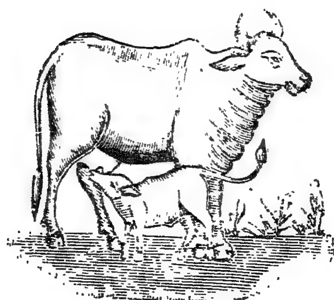
'कलाधर' नहीं, कान्तिशाली गगनमें ।
शरच्चन्द्र-नामक शरत् का सखा है ॥

न आकाश-गङ्गा, न ये तारिकाएं।
शरत्की है शय्या, बिछो हैं बे माला॥

(४)

नदी हैं, चमत्कारिणी···धीर शिष्या।
शरत्की लताएं, 'भरी लेखनी' हैं॥
हवा कोमलाऽङ्गी 'कला' है शरत् की।
नशा करनेवाली 'निशा है शरत्की॥





* सुप्त बीजोंका जागरण *



भूमिमें सुप्त यहां पर हम थे,
सदा मंडराते ऊपर गम थे,
उन्नतिके आसार बहुत कम थे,
फिर भी...साहससे सिर आज उठाते हैं।
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
एकसे हम अनेक हो जाते,
बीज हैं शत शत बीज बनाते,
फूलते, फलते, बढ़ते जाते,
जाग कर विहगोंसे हम जगत जगाते हैं।
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
कीट-रिपु कुतर...कुतर दल तोड़ें,
'मालिनी' फूल छीन ले भोरे,
हवा वह 'कैदी'-सम झकझोरे,

फिर भी आंसू...पी यहां गम खाते हैं।
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥

पेड़ बन, पल्लव-पतझड़ देखे,
फसलमें सुफल-कुफलके लेखे,
मौन हो, मुनि-मन-तत्त्वसरेखे,
मृत्युको, जीवनको हम रोज़ खिलाते हैं।
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥

अमिट हैं, मिट मिटकर भी ऐसे,
अलख हैं, लखे हुए भी वैसे,
अटल हैं, 'गाङ्गेय'-वचन जैसे,
जहांसे आये थे, वहीं मिल जाते हैं।
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं ॥
अमृत जल पाते ही 'अमर' बन आते हैं।



पीड़ा....प्रिये ! यदि तुम्हें भी हो !



पीड़ा...प्रिये !
यदि तुम्हें भी हो !
तब बिजलीके तारों द्वारा,
कुछ ध्वनि-ज्ञान हमें भी हो !
पीड़ा...प्रिये !
यदि तुम्हें भी हो !

अचल उदासी, अश्रु-निर्झरी,
निसदिन ध्यान तुम्हें भी हो !
तब टीसोंके मध्य...मध्यमें,
प्रणय-गुमान हमें भी हो !!
पीड़ा...प्रिये !
यदि तुम्हें भी हो !

मिलन-उपाय-कल्पना मीठी,
'जहर' वियोग तुम्हें भी हो !
तब मूर्च्छाके बीच बीचमें,
कुछ सुख-भान हमें भी हो !!
पीड़ा...प्रिये !
यदि तुम्हें भी हो।

तीव्र-विकलता, धृति-असफलता,
निज-जन-मान तुम्हें भी हो।
तब 'गाङ्गेय'-सांस हैं बाकी,
यह अनुमान हमें भी हो।
पीड़ा···प्रिये।
यदि तुम्हें भी हो।





मेरा प्रिय विराग वह आया



मेरा प्रिय विराग वह आया।
सरल, विमल, निस्पृह, हितकारी,
सुहृद नयन...भर आया।
मेरा प्रिय विराग वह आया॥

दुख-कांटोंसे छिदे पैर ले,
सकरुण गान सुनाया।
राग रागिनी-सहित 'राग'को
जिसने साधु बनाया॥मेरा०॥

फेंक 'लालसा' मुरझी माला
माया-जाल हटाया।
गत-पथकी असफलताओंपर,
रो—रोकर मुसकाया॥मेरा०॥

पीकर, पीड़ा—साध—उदासी
जिसने वह 'गम' खाया।
इङ्गित सा, अभिलाष, प्रेमसा,
अश्रु-वेगसा आया॥ मेरा०

पूर्णकाम परितृप्त 'देव' सा,
सुमति - सुधा ले आया।
परम शान्ति 'गाङ्गेय' सिद्धिसी,
दिव्य ज्योति जो लाया।
मेरा प्रिय विराग वह आया!





रजनी और प्रकाश

(१)

'परी' सी निकलीं तारावलिय
खिली थीं कोमल-कोमल कलियां,
मिलीं सुमनोंसे मञ्जु तितलियां,

* *

'रात' बस ! बीत गयी वह हन्त !
हुआ उन दृश्योंका हा ! अन्त !
दिखा फिर नया दृश्य अत्यन्त।
दिखा फिर नया दृश्य अत्यन्त॥

(२)

हृदोंके हृदय-कमल खिलते थे,
'दिवाकर' सित छबिसे मिलते थे,
क्रिया औ बोध सङ्ग चलते थे,

बस ! फिर पड़ा मृत्युका पाश ।
क्षणमें, बदला यह आकाश ।
दिखी वह 'रजनी' क्षीण प्रकाश ।
दिखी वह 'रजनी' क्षीण-प्रकाश ॥

(३)

सुमतिपर छा जाती जब 'बदली',
हृदयकी सरिता होती गदली,
चाह जब तमसे हिल मिल बदली,

*   *   *

उसी पल, चमकी नभमें बिजली,
दिखी फिर विमल गली कुछ धुंधली,
तिमिरमें, जगी ज्योति अति उजली ।
तिमिरमें, जगी ज्योति अति उजली ॥

(४)

ध्यानमें, मग्न यहांपर मन था,
योगसे, सन्तत संयत तन था,
रागसे रहित, अहित, वह बन था,

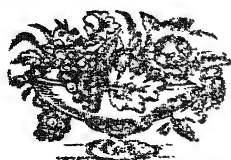
'रागिनी' आयी बस! श्रुति-पास,
रागमय करती हिय प्रति...श्वास।
मिले थे, रजनी और प्रकाश।
मिले थे, रजनी और प्रकाश॥

(९)

ये हैं, एक एक पर निर्भर,
यहांपर आते···जाते द्रुततर,
इन्हें बस ! देखो, 'दर्शक' बनकर,

* * *

इसीसे उज्ज्वल आत्म-विकाश।
डरो मत ! निरखो! यह आकाश।
इसीमें 'रजनी' और 'प्रकाश'।
इसीमें 'रजनी' और 'प्रकाश'॥



मेरा तपोवन



(१)

मेरे मनका चिर आकाङ्क्षित,
मुदमय, शान्त तपोवन हो !
निर्मल, सुन्दर, सजल, सफल नित,
सहृदय - बुध - जन - जीवन हो !!

(२)

'प्रकृति-अम्ब' की सुखद गोदमें,
सहज समाधि लगाऊं मैं।
'मां' की 'लोरी'के उस सुखमें,
जहां जन्म - फल पाऊं मैं ॥

(३)

प्रवचन औ स्वाध्याय, यज्ञ व्रत,
जिसमें होते हों अविरल।
'सेवा' जगे, जहां पर सोये,
भीति, द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिपल ॥

(४)

स्वयं कष्ट भी सह औरोंके,
हितकर कार्य जहांपर हों।
'करुणा देवी' के वाष्पों से,
जहां 'दुखी' सुख-'जल-धर' हों॥

(५)

जहां निराश 'उदासी' भी झुक,
ले...उपदेश मुदित हो दास।
सकरुण-हृदयों की गतियों से,
जहां गरीब भरें सुख-श्वास॥

(६)

'ओं तत्सत्' की ध्वनि मञ्जुल,
सुख-दायक हो नित्य जहां।
सबको सर्वाधिक प्रिय हो वह,
'उन्नततर' साहित्य जहां॥

(७)

बाह्य शान्त हो, शान्त गृहान्तर,
पशु-पक्षी हों शान्त जहां।
बचन शान्त हो हृदय शान्त हो,
'आत्म देव' हों! शान्त जहां॥

———o———

आ रही हैं आंखमें वे प्रेमियोंकी मूर्तियां !



आ रही हैं आंखमें वे,
प्रेमियों की मूर्तियां।

सुन रहे हैं 'कान' सचमुच,
गीत की वे पूर्त्तियां॥

कुछ क्षणोंमें ही हमें मिल,
मोह कर वे घर गये।
शक्ति थी कैसी? गजबकी,
वे अनूठी युक्तियां॥

छू रहे हैं हम हृदयसे,
भाव-सुम उनके यहां।
सूंघते हैं 'सुरभि' उनको,
गा रहे हैं सूक्तियां।

'भूल' सो 'गाङ्गेय'की वह,
स्मृति करे आवृत्तियां।
चिहुंक उठती हैं अचानक,
चित्त की ये वृत्तियां॥
आ रहो हैं आंखमें वे,
प्रेमियों की मूर्त्तियां॥



हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां



हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां,
तृषित, लुभित, सुख-खिंची, चकित-सी,
मृग - मरीचिका - छलियां,
हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां।

वेग-क्रिया-सी महावेग को,
उछलीं अहो ! बिजलियां,
खाई - खन्दक - गड़हे - टीले,
लखें न कमल - नयनियां।
हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां॥

ललचायी सी, फुसलायी सी,
चलीं वासना - वलियां,
विविध बांधनू बांध बांधकर,
खोल रहीं हिय-कड़ियां,
हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां।

प्रिय 'गाङ्गेय' गणित - विद्या-सो,
नौ - दो - ग्यारह - गतियां।
दीप्त 'मनोरथ-रवि' से चालित,
लपकीं, ललित धरणियां।
हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां॥

जहां मनोरम 'उपवन' समझा,
वहां ताप की गलियां।
मिलीं, उन्हें बस! 'लू' की लपटें,
फलीं न मन की फलियां।
हवा-सी दौड़ीं हरिण-हरिणियां॥

समझा था जल जहां, वहांपर,
मिलीं तप्त - रज - कणियां।
हन्त! भ्रान्त-मन-नयन भ्रमायी,
जलीं, वहां फुलझड़ियां।
हवा-सी दौड़ीं हरिण हरिणियां॥



रागमय ! ऐसा दो अनुराग !



रागमय ! ऐसा दो अनुराग !
रंग जाये जिसमें तन-मन सब,
बंधने आय विराग ।
रागमय ! ऐसा दो अनुराग !

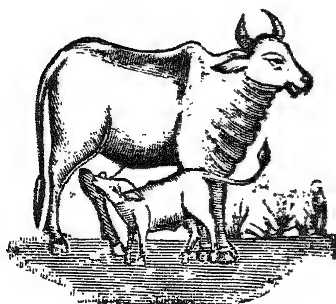
अरुण-अरुण उस स-करुण-दृगसे,
दृग में भरो पराग !
देख देख कर ही जिससे मैं,
रंग दूं, जग को जाग !
रागमय, ऐसा दो अनुराग !

निज-परकी सुध रहे न जिसमें,
करें मधुर स्मित 'बाग'।
तुम्हीं दिखो, बस! जिसमें प्रियतम,
इस 'मै'" का हो त्याग !
रागमय, ऐसा दो अनुराग !

बेहोशीकी 'गैस' सदृश जो,
तुम पर छिड़कूं नाथ !
फिर तुमको अपना लूं, पा लूं,
और जगा लूं, 'भाग' !
रागमय, ऐसा दो अनुराग !

भय-सङ्कोच, यन्त्रणा भागें,
खुल कर खेलूं फाग ।
प्रिय-'गाङ्गेय' तुम्हारा हो यह,
तुम हो मेरे भाग !
रागमय, ऐसा दो अनुराग !





सत्ता और विध्वंस



जगी थीं जिसमें ललित कलाएं,
बसी थीं चंचल वे चपलाएं,
जहां 'ध्वनि' लेती नित्य बलाएं,

स्थान वह मिट्टीमें मिल आज,
रुलाता किसे नहीं निर्व्याज ?
यहांपर 'दो दिन'का बस राज !
यहांपर दो दिनका बस ! राज ॥

हमें अब भूलें पुरकी गलियां,
मिली थीं जिनमें 'मुक्तावलियां',
सजी थीं फूलोंकी प्रिय छड़ियां,

दृश्य वह बदला जैसे 'कंस'।
किया सब 'शासक'ने विध्वंस।
उड़े, अब 'मानस' सरका हंस।
उड़े, अब 'मानस'-सरका हंस ॥

आह ! वह 'कनकमयी' सी काया,
मुझे थी, जिसपर ममता माया,
यहां मैं, जिससे खिंचकर आया,
अग्निमें 'दग्ध' हुई वह हाय !
हृदय यह रोता है असहाय।
हाय! में कैसो? ध्वनि निरुपाय।
हाय! में कैसो? ध्वनि निरुपाय।





अहो ! मैं आज उदासी आयी।



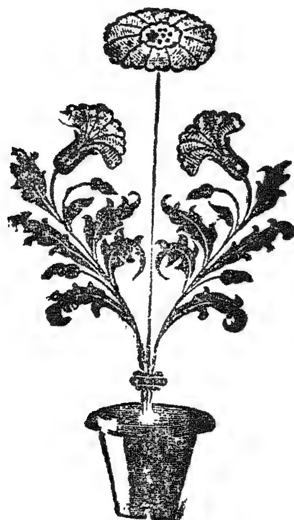
अहो ! मैं आज उदासी आयी।
मैं मनपर, मैं तनपर, मुखपर,
मैं नयनों पर छायी।
अहो! मैं आज 'उदासी' आयी।

मैं समाधि, मैं विश्व-पहेली,
बुझी हुई मैं बाती।
मैं मौनी हूं, मैं बेसुध हूं,
मैं नहिं उत्तरदायी॥
अहो! मैं आज'उदासी' आयी॥

सूख गयी अब 'ओस' कमलकी,
सूख गया यह कोश।
इसकी सूखी 'पंखुरी' हूं मैं,
मैं गूंगी... ...दुखदायी।
अहो! मैं आज उदासी आयी॥

मैं गत-स्मृति हूं, मैं विस्मृति हूं,
मैं आशा मुरझायी।
मैं चिन्ता, मैं हार, झिझक मैं,
मैं 'अशक्ति'- सो छायी।
विरह-वेदना-सो, पगली सी,
'बेहोशी' - सी स्थायी।
करुणा-कृश 'गाङ्गेय'-गिरा सी,
मैं स्मृति - मध्य समायी।
अहो! मैं आज 'उदासो' आयो।





यदि हम घन बन जाते आज

यदि हम घन बन जाते आज !
तपे हुओं को शीतल करते,
भरते 'सर' दल साज,
यदि हम घन बन जाते आज !

छीज...रहे उन प्रिय श्वासोंमें,
घुल मिल ... देते ओज।
उन केशों की धूल हटाते,
शीकर-मुक्ता साज ॥यदि हम०॥

दलित, दीन, तृषितोंके पुरमें,
उड़......उड़ कर दे नीर।
द्रुत तर उनके तरु-वल्लरि-दल,
सरसाते निर्व्याज ॥यदि हम०॥

असहायों' पर 'बम' बरसाते,
जो अति क्रूर जहाज।

इंजिनमें जम उन्हें गिराते,
कर शीतल हिम काज ॥यदि०॥

ललित लताओंको जो नोचें,
बरबस मसलें फूल ।
उन अकरुण नर-पशुओं पर हम,
तुरत गिराते गाज ॥यदि हम०॥

खारा जलकर 'मधुर प्राणमय'
हम उपजाते नाज ।
पुलकित कर पृथिवीको प्रतिपल,
सरस देखते साज ॥यदि हम०॥

प्रिय 'गाङ्गेय' - दमक दामिनि की,
लखते 'अलख' - समाज ।
नवल-पुरातन नद-नदियोंको,
देते तुरत स्वराज ॥
यदि हम घन बन जाते आज !



परिचय

(१)

पास दिखे, पर, दूर रहे जो,
मैं वह 'क्षितिज' नामका देश।
ध्वस्त हुईं, जो ध्वनिमें सोयीं,
मैं उन संस्कृतियोंका शेष ॥
ललित, भयंकर, विविध रागमय,
मैं हूं, 'शङ्कर' का वह वेष।
दीप्त - भावना - तड़िताओं का,
मैं स्वरमय अद्भुत 'आवेश' ॥

(२)

दुनियांके छल-छिद्रोंसे जो,
ऊब उठा, मैं वह उच्छ्वास।
स्वार्थमयी मित्रोंकी मतिसे,
विचलित जो, मैं वह विश्वास।

बड़े बड़ोंमें तृष्णाकर जो,
उस 'अतृप्ति' का मैं हूं श्वास।
'नश्वरता' लख लख भावोंकी,
कम्पित मैं, वह चकित प्रयास ॥

(३)

जहां 'प्रमोद-लहर' लहराती,
उस बगियाका मैं मधुमास।
खिंचे...खिंचे 'अलि'से आते जो,
उन नयनोंका मैं उल्लास ॥
मैं मुदमय, रसमय 'रसाल'-स्थित,
उस कोयलका कण्ठ-विलास।
कलियां खुल खिलती हैं जिसमें,
मैं उस 'ललित लता' का हास ॥

(४)

भृकुटि बङ्क जब यह होती है,
'चन्दन' भी: तब गरमाते।
नीति-चक्र जब चले हमारा,
परम चतुर भी चकराते ॥





जीना हो मरनेकी तैयारी



(१)

'जीना' यह, दुख-मंजिलका,
'जीना' है, खटका इस दिलका।
'जीना' है, पातक - पट - सीना,
'जीना' है, आज 'जहर' पीना ॥

(२)

'जीना' फिर...फिर मृतिने छीना,
चिर जीना, अति चिरसे छीना।
जीने में ये रोग लगे हैं,
जीने में दुख – भोग जगे हैं ॥

(३)

जीना है, छलमय ऐयारी,
जीना है, आज दगा भारी।

जीना, पर - धन - सम्पद हारी,
जीना है, कुटिल-कला चारी ॥

(४)

जब त्यागें, मनसे यह जीना,
तब समझें, सेवा-व्रत जीना।
जीना हो, वह जन-हितकारी।
जीना हो, ईश-स्मरण कारी ॥

(५)

जीना हो, इस मनकी रखवारी,
जीना हो मरनेकी तैयारी।
जीना हो, नित कर्मठता भीना,
जीना हो, बस! जन-मनमें जीना ॥





हम रोते जब, रोते जड़ भी,
हम हंसते, तब जग हंसता।
प्रेम-भरी जब 'यह दृग' होती,
जगत प्रेम-रसमें बहता ॥

(५)

हम निर्धन हों, या हों धन-पति,
साधारण हों ! या विद्वान !
हों नवीन, प्राचीन और या
हों उदार, अनुदार समान ॥
जो हों, सो हों ! पर, हम 'कवि' हैं,
कविता-पद - मणिकी छवि हैं।
हम तम-हारक, ज्ञान-प्रकाशक,
सचमुच ! हम रविके 'रवि' हैं ॥

(६)

गर्दिशमें पिस-पिसकर, कटकर,
हम छोटेसे रज-कण हैं ।
जलधि-नदी-नदसे बिछुड़े हम,
किसी आंखके जल-कण हैं ॥

'चिनगारी' हैं तृषा-अग्निको,
किसी नासिकाके निःश्वास।
भूलें-पोल-भरे हम सचमुच,
पञ्च-तत्त्व हैं, पञ्च-विलास॥

(७)

कच्चे घट-सम, जलें अस्थि ये,
जिसमें मैं वह 'आवा' हूं।
'ज्वालामुखी'-शिखरसे पिघला,
मैं वह जलता 'लावा' हूं॥
कण-कण जिसके सिकुड़ जमे हैं;
वह उदास मैं प्रस्तर हूं।
शब्द नहीं हो सके जहां वह;
शून्य गगन मैं मतिपर हूं॥

(८)

जन-रञ्जक 'गाङ्गेय' अमर स्वर हूं!
सहृदय-पदका मधुकर अनुचर हूं!
कबसे छूटा? अ-धनुष मैं 'शर' हूं!
मानस-सर हूं, मैं तीव्र असर हूं!

जड़-जङ्गम मय अनुपम अनुभव हूं !
मधुर प्रेमकी; मधुमय मैं 'जै' हूं !
अब यह अन्तिम परिचय देता हूं !
जो तुम हो, वह 'मैं' हूं ... वह मैं हूं !





प्रकृति हमें शिक्षा देती है

(१)

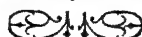
प्रकृति, हमें शिक्षा देतो है ।
प्रकृति हमें भिक्षा देती है ॥
हन्त! कराकर सुकृत कुकृत बहु
'फलमय' वह दीक्षा देती है ॥

(२)

रुकनेपर, ठोकर लगनेपर,
गिरनेपर...'हेतु' बताती है ।
सोच...सोचकर सोच कराती,
अति कठिन परोक्षा लेती है ।
प्रकृति हमें शिक्षा देती है ॥

(३)

समय व्यर्थ या सार्थक है यह,
तुच्छ-अर्थ या हुआ अनर्थ ।
भीतरसे हो तारों द्वारा,
यह झङ्कृति प्रकृति सुनाती है ॥
प्रकृति हमें शिक्षा देती है ॥



ओ! अतीत जीवनकी स्मृतियो!



ओ ! अतीत जीवनकी स्मृतियो !
ओ......! ओ......! ओ......!!

ताप-रहित हे मेरी आहो !
तरी-रहित प्रिय हंसियो !
गति-विरहित हे गत-प्रभुनाओ !
ओ ! बीती......बेकसियो !
ओ ! अतीत जीवनकी स्मृतियो !

*   *   *   *

अभी...व्यतीत हुई हे घड़ियो !
चिर - विरहित प्रिय सखियो !
खुली...खुली हे दीप्त खिड़कियो !
ओ ! मुकुलित कमलिनियो !
ओ ! अतीत जीवनकी स्मृतियो !

*   *   *   *

दयित-मिलनकी मृदुपुलकनियो !
प्रिय - वार्त्ता - झङ्कृतियो !!
हे चित्रित चिन्मय चपलाओ !
हे हृदयालङ्कृतियो ! !
ओ ! अतीत जीवनकी स्मृतियो !

*   *   *   *

मेरे मानस - पट - पर अङ्कित,
धुंधली रेखा - कृतियो !
प्रिय 'गाङ्गेय' सरस सरिताओ !
ओ ! असीम की गतियो !

ओ ! अतीत जीवनकी स्मृतियो !
ओ......! ओ......! ओ......!!



मृग-मरीचिकाका यह घर है

(१)

मृग-मरीचिका का यह घर है,
ताप शाप ही इसका वर है।
तपो! तपो! गल...गलकर पिघलो,
पल पलपर इस घरमें सम्हलो॥

(२)

मोहमयी की चारु चमक से,
यहां चौंध जाती है आंख।
यहां न छाया न शान्त काया,
रहे न चिर...दिन जनकी साख॥

(३)

यह उजाड़, बीहड़, ऊसर है,
ग्लानि, निराशा, दुखका घर है।
रहना ही है इसमें हमको,
हन्त! हमारा यह वह घर है॥

(४)

भीत नहीं, ना छत इस घरको,
सड़क न, नम्बर, नहीं निशान।
चिह्न-रहित भी चिर-चीह्ना यह,
'भूल-भुलैया' का यह स्थान॥

(५)

खोलो, आंख लगें, लू-लपटें,
घरमें ज्वरमय रज-कण झपटें।
जलो! जलो! अब खुद बल जाओ!
बस! 'ज्योतिर्मय' तुम हो जाओ!!





गूंगी ध्वनि जब रोयी

घटमें गूंगी ध्वनि जब रोयी ।
हिली मेदिनी, कांपा नभ-सिर,
लता गिरी, स्मृति खोयी ।
घट में गूंगी ध्वनि जब रोयी ॥
विकल चकोर, कीर, चकवा तब,
नदी जगी ... ... जो सोयी ।
घटमें गूंगी ध्वनि जब रोयी ॥
श्वास - समीरण लगा पिघलने,
'आस' नहीं थी कोई ।
घटमें गूंगो ध्वनि जब रोयी ॥
उसी समय मधुमय प्रिय ध्वनि सुन,
उठ बैठी स्मित—धोयी ।
घटमें गूंगो ध्वनि जब रोयी ॥
निज 'झङ्कृति' से ही वह गूंजी,
फली लता जो बोयी ।
घटमें गूंगो ध्वनि जब रोयी ॥

संघर्षोंकी आग

~~*

(१)

अहो ! विश्वमें सब जीवोंको,
रोग निरन्तर सता रहे।
असफलताएं सुखा रही हैं,
'देश' द्वेष हैं बता रहे ॥
हृदय तोड़ती 'कुटिल क्रूरता',
कुमति करे कृश पलपलमें।
'सङ्घर्षों'की आग, अनूठो,
सुलग रही है जल-थलमें ॥

(२)

विकट द्वन्द्व भीतर ही भीतर,
मचा हुआ है प्रति दिन ही।
मनोवृत्तियोंका वह भीषण,
रण चलता है, अन्त नहीं ॥

निज-परके 'सङ्कल्प' अपरिमित,
जबरन उठते, रुकें नहीं।
अभिनिवेश-सा हो जाता है,
अन्दर, बाहर, चैन नहीं ॥

(३)

जीवों में संग्राम लगा है,
एक एक को खाता है।
उसे दूसरा, उसे दूसरा,
प्रकृति-प्रवीण पचाता है।

जलमें, थलमें, नभमें भी हां,
विकट द्वन्द्व है मचा हुआ।
जुग जुग से जगके युद्धोंमें,
जीव जीव है पचा हुआ ॥

(४)

भावोंके भी युद्ध हुए हैं,
संस्कृतियोंके वे सङ्घर्ष।
परम्पराओंके प्रचण्ड रण,
देश - देश - व्यापी दुर्धर्ष ॥

विज्ञोंमें, विज्ञानोंमें भी,
भिन्न कलहकारी आदर्श।
शास्त्र-शास्त्रमें, मुक्ति मुक्तिमें,
युक्ति-युक्ति में है सङ्घर्ष॥

(५)

खेतीमें हैं विघ्न विकट तम,
व्यापारोंमें हैं झगड़े।
मान-हानि है मजदूरोमें,
राज-नीति में कष्ट बड़े॥

न्यायालयमें भी दुखदायी,
छल-कपटों के रण दुर्धर्ष।
प्रेम, धर्म, 'साहित्य' मध्य भी
ईर्ष्या–निन्दा के सङ्घर्ष॥

(६)

मन 'मथ' देता 'मन्मथ' जबतब,
क्रोध बोध हर लेता है।
मोह मूढ करता है मनको,
तनको सांसत देता है॥

ईर्ष्या जर्जर करती रह रह,
'द्वेष' क्लेश नित देता है।
लोभ, क्षोभमय करता प्रतिदिन,
"जीवन-मधु" हर लेता है॥

(७)

सागर-पृथिवीमें सङ्घर्षण,
ध्रुव-धुरियोंमें 'भ्रमि' अविराम।
वायु-तेजके द्वन्द्व दिखाते,
अन्धड़, ओले, बदली, घाम॥

इस कण-कणमें, बूंद-बूंदमें,
ध्वनि-प्रतिध्वनिमें है संघर्ष।
भूतों और महा भूतोंमें,
भूत-भविष्यत में सङ्घर्ष॥

(८)

लड़कोंमें है लगी लड़ाई,
बड़कोंमें है विकट वितर्क।
स्त्री-पुरुषोंके वैमनस्य से,
घर-घर होता जीवन नर्क॥

चन्द्र-सूर्यमें, ऋतु-ऋतुमेंभी,
दिवस-रात्रिमें है सङ्घर्ष।
डाल-डालमें, पात-पातमें,
बात-बातमें है सङ्घर्ष॥

(९)

रोग-युद्धमें जीर्ण-शीर्ण हो,
तन मनका होता अपकर्ष।
वात-पित्त-कफमें जिस तिसका,
होता रहता है उत्कर्ष॥

मरनेपर भी कृमि-भूमी-मिस,
इस तनमें पल-पल संघर्ष।
जीनेमें संघर्ष लगा है,
मरनेमें भी है संघर्ष॥

(१०)

आओ! आओ! हमें जलाओ!
ज्वालाओ! जल...जल उज्ज्वल!
रोम-रोममें रम जाओ, बस!
पी जाओ! आंसू बल-बल॥

अरी ! अनादि अनन्त आग ! तू,
अन्तरतममें अब लग जा !
छोड़, पोच, सङ्कोच निरन्तर,
अन्तर संग अब तू जग जा॥

(११)

लाल शिखा बन, लपक ! लपक ! री,
धूमिल हो, क्यों धुखती है ?
भरी हुई कबसे भय-रजसे,
आंख हृदयकी दुखती है ॥

जल जायें या, ढल जायें हम,
सहज स्वर्ण-सम 'सांचे' में।
मत रख ! मत रख ! अरी, हमें इस,
कच्चे उरके ढांचे में ॥

(१२)

हा ! हा ! 'हाहाकार' यहांपर,
गूंज रहा है तन-तनमें।
टूट रहे हैं मंजु मनोरथ,
धैर्य-सहित वे मन-मनमें ॥

हन्त ! हन्त ! 'गाङ्गेय' जीव ये,
मृत्यु-समय भी प्यासे हैं।
'संघर्षों का आग' लगी है,
जलती इच्छा-लाशें हैं ॥

(१३)

देश-देशमें द्वन्द्व मचा है,
जाति-जातिमें क्रूर अमर्ष।
परिवारोंमें लाग-डांट है,
व्यक्ति-व्यक्तिमें है संघर्ष ॥

हन्त ! रात दिन धड़क...धड़ककर,
हृदय कर रहा यह संघर्ष।
श्वास-श्वास संघर्ष-मग्न है,
जीवन भी है यह संघर्ष ॥

(१४)

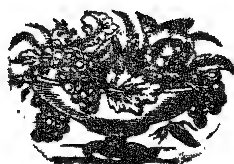
अपनेमें ही सब सपने हैं,
मधुर और कटु अद्भुत घोर।
इन संघर्षों में मन पिसता,
सन्ध्या होती फिर...वह भोर ॥

फूलोंसे वे टूक...टूक हो,
प्रिय अभिलाष करें उर-शूल।
लोक-लाज, कर्त्तव्य-प्रेरणा—
'हवा' उड़ाती उनपर धूल॥

(१९)

संघर्षोंकी आग अनोखी,
छूई छिन-छिन जीवनमें।
संघर्षोंका धूम देख नित,
खिन्न नयन घरमें, वनमें॥

संघर्षोंसे योग-सिद्धि भी,
सुख संयम - संघर्षोंमें।
'संघर्षोंकी आग' जग रही,
"सोऽहम्" के संघर्षोंमें॥



चमत्कारमयी बिजली

——*०*——

(१)

मैं द्रुतगति हूं, मैं उन्नति हूं,
मैं 'बिजली' ध्वनि-जननी।
मैं विरागिनी, रागमयी मैं,
मैं विधिकी हूं सजनी॥

*　　*　　*

मैं बिजली ध्वनि-जननी॥

(२)

मैं चितवनमें, मैं उपवनमें,
मैं सुवर्णमें छायी।
मैं प्रबालमें, मुक्तामें मैं,
'उन्नत मेघ'-समायी॥

*　　*　　*

मैं बिजली ध्वनि-जननी॥

(३)

मैं वेदोंमें, मैं कुरानमें,
मैं 'गीता' को वाणी।
मैं युद्धोंमें, मैं क्रुद्धोंमें,
मैं भैरवी - कृपाणी ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(४)

प्रेममयीमें, प्रेमीमें मैं,
प्रेम - पत्रमें भाती।
मैं नयनोंमें, मैं हृदयोंमें,
स्पर्श—'करेंट' लगाती ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(५)

मैं गोरोंमें, मैं कालोंमें,
मैं 'ईसा - मूसा' में।
मैं समुद्रमें, मैं अम्बरमें,
मैं बैठी बसुधामें ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(६)

मैं किचोंमें तलवारोंमें,
मैं तोपों में भड़को।
मैं सेनामें कूटनीतिमें,
मैं कलहोंमें कड़की ॥

* * *

मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(७)

मैं उत्पादक, मैं संरक्षक,
मैं विध्वंसक लहरी।
विधि-हरि-हर-'एडीसन'-अर्चित,
अहो! 'सुधा' मैं जहरी ॥

* * *

मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(८)

मैं भाषामें, मैं भावोंमें,
विविध कलोंमें थमतो।

चन्द्र-मुखीमें, चन्द्र-सूर्यमें,
मैं कवितामें रमती ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी॥

(९)

मैं मिलनेकी अकुलाहटमें,
मैं आंसूमें आयी।
मैं चिन्तामें मैं समाधिमें,
प्रेम - व्याधिमें छायी ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(१०)

मैं आर्तोंकी क्रन्दन-ध्वनिमें,
मैं मरणोंमें गूंजो।
मैं श्मशानमें, मैं सरितामें,
मैं जलमय-गति 'पूंजो' ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(११)

मैं धनियोंमें, मैं मणियोंमें,
मैं नृप - नयमें 'धमकी'।
मैं किसानमें, मैं मजूरमें,
मैं मिलमें हूं चमकी ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(१२)

मैं विकाशमय, मैं प्रकाशमय,
भार - रहित मैं वजनी।
मैं विलासमय, मैं हुलासमय,
मैं सुख की हूं रजनी॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥

(१३)

जाग...जाग मैं जड़-जङ्गममें,
जीवन - मन्त्र सुनाती।

मैं जग-जयिनी, 'अमर-योगिनी',
मैं नित 'अलख' जगाती ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि - जननी ॥

(१४)

'जागरूक' मैं प्रभु-महिमा हूं,
मैं अनुपम उपमा हूं।
मैं "गाङ्गेय"-गगन-गरिमा हूं,
मैं दैवी प्रतिमा हूं ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि - जननी ॥

(१५)

मैं साक्षी, मैं घट-घट वासी,
मैं चिन्मय - वामा हूं।
मैं प्रमोदमय, मैं अनुभवमय,
मैं शिवमय 'आत्मा' हूं ॥
* * *
मैं बिजली ध्वनि-जननी ॥



❀ हंसकी वाणी ❀



मैं हूं, विधि-गृहके, हंसकी वाणी !
हिय...हियमें, गूंजी, पर हूं, अनजानी !
मैं हूं, विधि-गृहके, हंसकी वाणी !!

विधि स्वतन्त्र हैं, हंस स्व-वश है,
मैं उनकी भी मोहक हूं।
जो चाहूं, सो करूं यहां मैं,
यही, मुझे प्रिय, सत्य कहूं ॥
भावोंसे हूं मुखर, मूक ! पहचानी !
मैं हूं विधि-गृहके, हंसकी वाणी !!

श्रेय संग मैं श्रेयमयी हूं,
प्रेय संग मैं प्रेम-मयी।
चूक...चूकपर, चूक करूं मैं,
सदा पुरातन, नित्य नयी ॥
'रोक' देख, सन्तप्त बनूं रुद्राणी !
मैं हूं, विधि-गृहके, हंसकी वाणी !!

प्रिय 'मानस' हो, वे लहरें हों,
कमल-कमलिनी हों मुदमय ।
'मुक्ता' हों सङ्कोच - विमुक्ता,
मैं होऊं मञ्जुल स्वरमय ॥
मधुर स्वप्नकी बात यही बस ! जानी !
मैं हूं, विधि-गृहके, हंसकी वाणी !!

तिमिर-हरण 'अरुणोदय' लख वह,
'स्वप्न' सो गया, जगा विचार ।
रोती आयी 'दुविधा' बस ! फिर,
दिखा, अग्निमय गगन अपार ॥
चाह-लतापर, पड़ी 'लूक' अनजानी !
मैं हूं, विधि - गृहके, हंसकी वाणी !!

अश्रु-धौत इस हियमें हुलसी,
शुद्ध प्रेमकी 'पावनता' ।
भाग गया ! 'उद्वेग' वेगसे,
शान्त ! हुई वह 'उत्सुकता' ॥
वह थी, 'साक्षी' की, मुदमय मनमानी !
मैं हूं, विधि-गृहके, हंसकी वाणी !!



दयामयी म

—०८ॐ०ॐ००—

(१)

पलकोंसे पोछूं हुलस,
मां ! तेरी पद-धल ।
अश्रु-धारसे धो सुचिर,
क्षमा कराऊं भूउ

(२)

इस जलते संसारकी,
पाऊं ओर न छोर
मां ! अब द्रुत यह ताप हर,
कर, 'करुणा' का कोर ॥

(३)

दुखद फफोले हैं पड़े,
हियमें हन्त ! अनेक ।

स्वच्छ ज्ञान-नवनीतसे,
उन्हें शान्ति दे नेक !!

(४)

लगीं ठोकरें हैं बहुत,
छिले, कटे, ये अङ्ग।
देकर 'शिव-संकल्प'-जल,
रोक, रुधिर-व्यासङ्ग ॥

(५)

योगमयी धृतिमयी !
सिद्धिमयी ! हे अम्ब !
दयामयी ! इस दीन को,
दे, संयम-अवलम्ब ॥

(६)

विविध-लालसा-जाल यह,
सुमति-छुरी से काट।
ले चल, मुझे 'प्रमोद-पुर',
खोल, विवेक-कपाट ॥

(७)

यह संकटमय घोर वन,
मैं बालक लाचार।
जननि! गोद 'गाङ्गेय' को,
लेकर करदे, पार॥





(३)

छुटतो...लाज लिये,
मोहन — कवच धरे,
मधुराऽऽकूत ... भरे,
नजर, लगी...जिनकी।
दृष्टि, पड़ी......जिनकी ॥
आयो...सुधि उनकी।
जागी...स्मृति उनकी ॥

(४)

छिन में...छल-सी गयी,
विष-सी...भीन गयी,
हिय में...गड़-सी गयी,
सरल...हंसी जिनकी।
आयी...सुधि उनकी ॥

(५)

व्यञ्जित 'राग' ढके,
मंजुल हाव धरे,
स्पन्दित...हृदय कसे,
झांकी...मिली जिनकी।
आयो...सुधि उनकी ॥



सखि ! हे ! कल्पना-लोककी

सखि! हे ! कल्पना—लोककी ।
रश्मि ! हे ! रत्ना ऽऽ लोककी ॥

मोहित सा, कम्पित सा, विस्मित सा,
मनको कर देने वाली !
नित स्मृतिमें चुभ, रहने वाली !
अमर पुरीकी प्रिय आली !!

रज्जु ! हे ! रक्ता ऽ शोककी ।
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

सुधा-लहर सी, प्रियझङ्कृनि सी,
प्रेयसि ! हे ! संजीवनि ! हे !
पल-पल——पलक विहारिणि ! योगिनि !
प्रणय-दीप संदीपनि ! हे !

छवि ! हे ! स्वर्णमय 'कोक' की ।
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

विविध रूपमयि ! विविध देशमयि !
ऋद्धिमयी ! आल्हादमयी !
'मूर्ति' तुम्हारी लगे रुचिर नित,
चिर-परिचितसी भावमयी ॥

हूक ! हे ! उस बंधो 'रोक' को ।
सखि ! हे ! कल्पना—लोकका ॥

अल्प...अल्प हम रहें यहांपर,
अधिक रहें संकल्पोंमें ।
नित्य 'कल्पनामयी' प्रणयिनी,
बांधे हमें विकल्पोंमें ॥

स्वामिनी ! लालसा—लोककी ।
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

खिन्न...खिन्न होकर भी चाहें,
तुम्हें मधुर पीड़े ! प्यारी !
बिना तुम्हारे लगे 'शून्य'-सा,
दृग-रञ्जनि ! मन-मुद्कारी !

प्रतिध्वनि ! 'ध्वनिमय'-लोककी ।
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

सचमुच ! होगा 'अशुभ दिवस' वह,

प्रस्तर-सम हम होंगे तब ।

प्रिये ! कल्पने ! मधुर श्वास तज,

पूर्ण यहां तुम होगी जब ॥

हाय ! हे ! नश्वर—लोककी ।

सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

सुखी, दुखी, मैं जो था, तब था,

अब तो 'प्रिय-स्मृति' ही मैं हूं ।

सजनि ! कल्पना-सुन्दरि ! सचमुच !

अब मैं तुम हो, तुम मैं हूं ॥

पूर्णिमे ! चन्द्राऽऽलोककी ।

सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

कब ?...कब ? कहां ?...कहां ? पर हमने,

कैसे ? तुमको चाहा था ।

चन्द्रवदनि ! हे ! कुमुद नयनि ! सखि !

मनको मनने दाहा था ॥

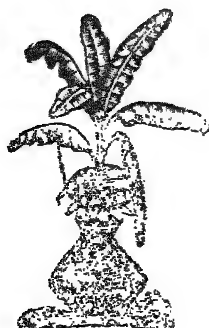
भ्रान्ति ! हे ! उस 'मरु'-लोककी ।

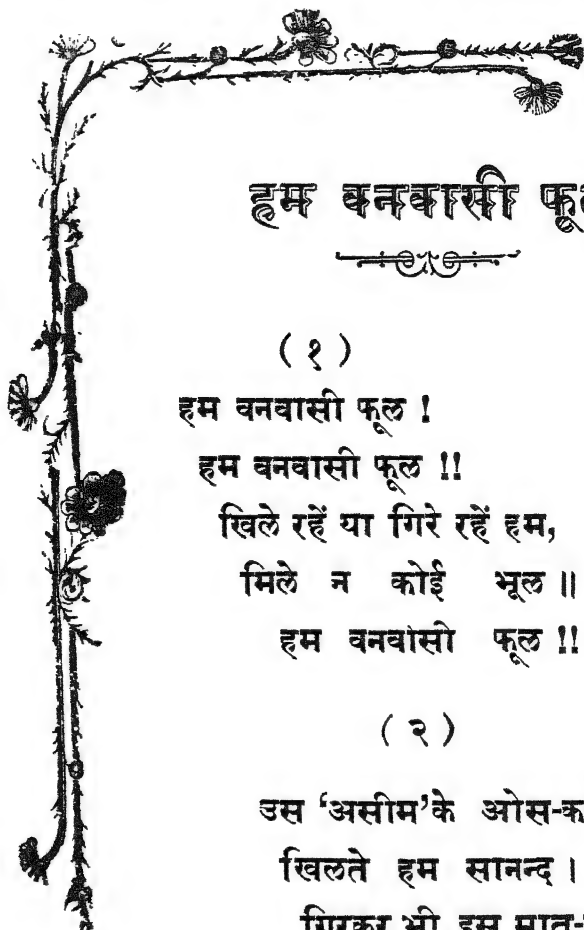
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥

कभी न मिलनेवाली मुझको,
किरण ! दिव्य आलोककी ।
प्रिय "गाङ्गेय" प्यास-सी, पय-सी,
प्रेयसि ! निर्झरि ! शोकको ॥

सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ।
रश्मि ! हे ! रत्नालोककी ॥
गुणमयी ! त्रिगुणालोककी ।
सखि ! हे ! कल्पना-लोककी ॥







हम वनवासी फूल

(१)

हम वनवासी फूल !
हम वनवासी फूल !!
खिले रहें या गिरे रहें हम,
मिले न कोई भूल ॥
हम वनवासी फूल !!

(२)

उस 'असीम'के ओस-कणोंसे,
खिलते हम सानन्द ।
गिरकर भी इस मातृ-भूमिके,
पद...पर लोटें फूल !
हम वनवासी फूल !!

(३)

कङ्कण बनें, बनें वरमाला,
हमें नहीं यह चाह।
नहीं चाहिये हमें 'मालिनें',
सुई, सूत, न शूल !
हम वनवासी फूल !!

(४)

यहां न चोरी, न है डकैती
तुड़ें न फूले फूल !
नहीं प्रजाका, नहीं 'कोर्ट'का,
चले यहांपर रूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(५)

कांटोंमें भी खिलखिलकर हम,
छिदें न होवें म्लान।
प्राणोंमें भर प्रेमीके हित,
'मधु' रखते अनुकूल।
हम वनवासी फूल ॥

(६)

यहां नहीं आराम 'नगर' का,
नहीं चाहिये 'नाम'।
सुरभि उड़ाकर दिन-दिन सूखें,
यह सम्मत सुख-मूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(७)

हम स्मृत नहीं, हमें 'विस्मृत' ही
समझो, हे स्मृतिमान !
स्मरण-मरण-दुख-मोह-जाल में,
भटक रहे सब भूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(८)

नगर-कुसुम हम नहीं सँवारे,
देखी······नहीं दुकान।
हमें होटलों के गुच्छोंका,
ज्ञान नहीं आमूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(६)

यहां नहीं आराम 'नगर' का,
नहीं चाहिये 'नाम'।
सुरभि उड़ाकर दिन-दिन सूखें,
यह सम्मत सुख-मूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(७)

हम स्मृत नहीं, हमें 'विस्मृत' ही
समझो, हे स्मृतिमान !
स्मरण-मरण-दुख-मोह-जाल में,
भटक रहे सब भूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(८)

नगर-कुसुम हम नहीं सँवारे,
देखी······नहीं दुकान।
हमें होटलों के गुच्छोंका,
ज्ञान नहीं आमूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(९)

निरपराध भी हमें सताते,
दौड़ शिकारी व्याध !
हम गिरते, तरु-पक्षी गिरते,
व्याध बने, प्रतिकूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(१०)

अग्नि-बाणसे उन व्याधोंने,
हन्त ! लगा दी आग ।
दावानलकी 'लपट' जलाती,
आंधी देती हूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(११)

जले-गिरे हम जहां, वहांपर,
'ओस'-भरी थी दूब ।
उसके ही 'गाङ्गेय' अङ्कमें,
शान्ति मिली, सुख-मूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(१२)

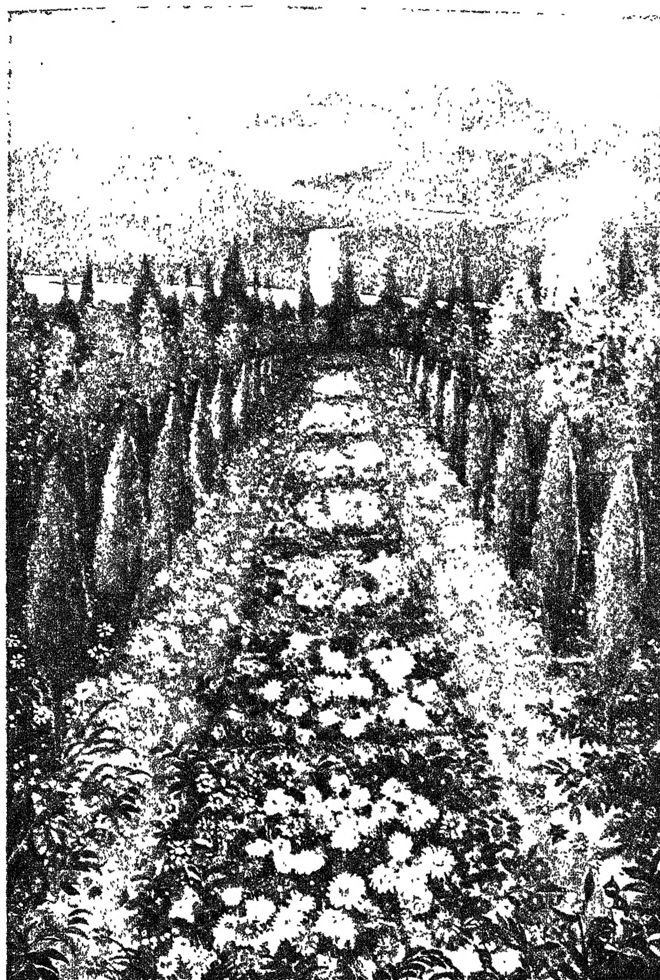
शिव-समाधि जब लगे हमारी,
प्रस्तर हों तब फूल।
हम खिलते जब, 'समय' खिले तब,
फूले त्रिभुवन फूल ॥
हम वनवासी फूल ॥

(१३)

मातृ-भूमिके हित, निज तन दे,
हम बन जाते धूल।
मर…मरकर भी 'अमर' हुए हम,
इसी भूमिसे फूल !
हम वनवासी फूल !!

[समाप्त]





यहां नहीं आराम नगरका, नहीं चाहिये नाम ।
सुरभि उड़ाकर दिन-दिन सूखें, यह सम्मत सुख-मूल ॥
हम वनवासी फूल !

पूर्णाहुति :—

(१)

माता श्रीरामदेव्याख्या यस्य माध्वी-शिरोमणिः ।
पिता च परमो विद्वान् श्रीमान् 'कृष्णदयालु*'कः ॥

(२)

"गाङ्गेयो" पाभिधः सोऽयम् कविः, शास्त्री, नरोत्तमः ।
'लोक-सेवा'र्थ मेवैतत् कृतवान् नम्र भावतः ॥

* सम्पूर्ण *

---

* षड्दर्शनाचार्य, तान्त्रिक-शिरोमणि,
स्वर्गीय पं० कृष्णदयालु शास्त्री ।

महाकवियोंके निर्णय :—



नैसर्गिकी च प्रतिभा, श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
अमन्द श्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्य-सम्पदः ॥

—महाकवि आचार्य दण्डी ।

पण्डित कवयः "कवयः" केवल कवय स्तु केवलं "कपयः" ।
"कुल-जा" या, सा जाया, केवल जाया तु केवलं माया ॥

*　　*　　*

सहोदराः कुङ्कुम-केसराणां भवन्ति नूनं कविता-विलासाः ।
न शारदा-देश मपास्य दृष्ट स्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः ॥

—महाकवि बिल्हण ।

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं, दूरेऽपि वसतां सताम् ।
केतकी-गन्ध माघ्राय, स्वयमायान्ति षट्पदाः ॥

*　　*　　*

विविक्त-वर्णाभरणा, सुख-श्रुतिः, प्रसादयन्ती हृदया न्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाऽकृत-पुण्य-कर्मणां, प्रसन्न-गम्भीर-पदा "सरस्वती" ।

—महाकवि भारवि ।